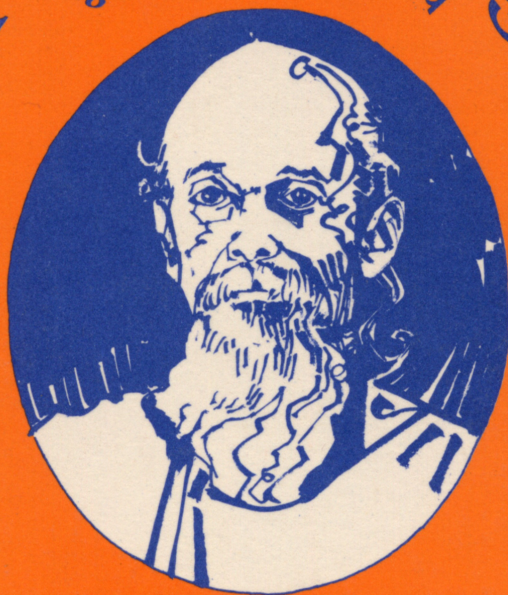


-काव्य कंठ गणपति मानव-
व्यक्तित्व एवं कृतित्व



आकार वदनम् वन्द्याम् कविनाम् आदिमम् कविं
वन्दे गणपति देवम् नखेष धरम् गुरुं

काव्य कंठ गणपति मुनिवर
(व्यक्तित्व एवम् कृतित्व)

मूल कन्ड
आर. नागराज

हिन्दी अनुवाद
डा. ए. बी. साई प्रसाद एम.ए. पी.हेच.डी

प्रकाशकः
गिरीषा पब्लिकेशन्स्
मद्रास - 600101

Kavyakanta Ganapathi Munivar:

Hindi Translation by **Dr. A.B. Sai Prasad** of
R. Nagaraj's Kavya Kanta Vasishta Ganapathi Munigalu
in Kannada.

First Edition : September 1995

Price **Rs. 30/-**

Cover Page : Sri Bapu

Copies Available from:

Smt. A.B. Madhura Prasad
W-58 Maitri, 8th Street, B Sector
Anna Nagar West Extension
Madras 600 101

Sri. R. Sreeramulu
10/228, Vasanthapuri Colony
Malkajigiri
Hyderabad 500 047

This book is published with the Financial Assistance
of "*Tirumala Tirupathi Devasthanams*" under their
scheme "*Aid to publish religious books*".

Typeset at COMPUPRINT, 51 Giri Road, T. Nagar,
Madras 600 017. ©: 827 5750 • Fax: 826 4885

Printed by CREATIVE DESIGN, Madras.

क्रम

आर्शसा

अपनी बात

१. पूर्वज
२. बाल्य
३. तपस्या के लिए देशाटन
४. जीवन का लक्ष्य
५. कष्टों से झड़पा-झड़पी
६. सिद्धियाँ
७. पद और यश की प्राप्ति
८. काशी क्षेत्र
९. दुबारा देशाटन
१०. अरुणाचल में
११. आम जनता के साथ
१२. अपनी मातृ-भूमि के लिए व्याकुलता
१३. अप्पु का आगमन
१४. विद्यार्थियों के साथ
१५. तपस्या के लिए बुलावा
१६. दीक्षा
१७. गुरुजी के चरणों के पास
१८. उमा सहस्रम
१९. साक्षात्कार
२०. कपाली शास्त्री जी
२१. पुलिस वालों से क्लेश
२२. परशुरामावतार
२३. देवी दर्शन

२४. फिर एक बार पुलिस का तंग
२५. दक्षिण के क्षेत्रों का दर्शन
२६. पश्चिमी साधक
२७. उडुपि और गोकर्ण की यात्रा
२८. यज्ञ
२९. उत्तर भारत की यात्रा
३०. महेन्द्रगिरि में तपस्या
३१. फिर अरुणाचल की ओर
३२. काव्य और भाषण
३३. सिद्धि
३४. रमणाश्रम की स्थापना
३५. राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में
३६. सामाजिक समस्या के भँवर में
३७. पत्नी की बिदायी
३८. वर्णाश्रम संबंधी खलवली
३९. पांडिच्चेरी के अरविन्दाश्रम में
४०. जीवन वृत्तांत
४१. कुलुवे ग्राम में आगमन
४२. सिसीवास और सद्दर्शन की रचना
४३. वेदों का विशाल दृश्य
४४. विश्वविद्यालय के भाषण
४५. कलकत्ता अवस्थान
४६. मुनिवर जी के विचारपूर्ण प्रवचन
४७. निर्याण
४८. उपसंहार

आशंसा

‘ नायना ’ (बापू) के नाम से सुप्रसिद्ध काव्यकंठ वाशिष्ठ गणपति मुनि उन्नीसवीं शती के अंतिम दशकों में (1878) में जन्म लेकर, बीसवीं शती के प्रारंभिक दशकों में (मृत्यु तिथि 25.7.1936) जीवित महामानव थे । वे सिद्ध पुरुष, महातपस्वी, तथा महोपासक थे । वे एक साथ आर्षविज्ञान के प्रकांड पंडित, सरसकवि, सफल गुरु, राष्ट्रवादी और सुधारवादी थे । सनातनधर्म के पक्षपाती होते हुए भी, आधुनिक युग के तथाकथित समाज सुधारकों के समान न होकर, धर्मशास्त्र और इतिहास के आधार पर, समाज में सुधार लाने में विश्वास रखते थे । 1924 में तमिलनाडु के तिरुवण्णामलै में संपन्न राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्षपद से गणपति मुनि ने जो भाषण दिया था, वह उनकी सामाजिक और राजनैतिक विचार-धारा को स्पष्ट करनेवाला है । अस्पृश्यता को दूर करने को वे धर्मशास्त्र सम्मत मानते थे । वे संस्कृत को राष्ट्रभाषा बनाना चाहते थे किन्तु महात्मा गान्धीजी के आग्रह पर कि हिन्दी ही राष्ट्रभाषा बनने योग्य है, उन्होंने राजनैतिक-स्वतंत्रा आन्दोलन में भाग लेना ही छोड़ दिया ।

गणपति मुनि के पूर्वज तमिलनाडु से आकर आन्ध्रदेश में बस गये । उनके शिष्य देश भर में फैले हुए हैं और उनके आश्रम देश के विभिन्न भागों में उपस्थित हैं । वे न तमिलनाडु के हैं न आन्ध्र के । उन्हें सच्चे अर्थों में विश्व-मानव कहना चाहिए । वैदिक विज्ञान के धरातल पर उनके उपदेशों और प्रवचन विश्वमानव सौभ्रातृत्व को उभारनेवाले हैं । इसीलिए सर्वश्री कपालि शास्त्री, सुधन्व, दैवरात (ये तेलुगु भाषी नहीं हैं), महर्षि अरविन्द, श्री माता ने गणपति मुनि का विशेष आदर-सत्कार किया है ।

काव्य के क्षेत्र में भी गणपति मुनिजी का योगदान सराहनीय है । 'इन्द्राणी सप्तशति' आदि स्तोत्र ग्रन्थों में भी राष्ट्रीयभावों को सरस और प्रभावशाली शैली में अभिव्यक्त किया है ।

ऐसे महानुभाव श्री गणपति मुनि बंगाल के खडगपुर रेल्वे कॉलोनी में स्थित निपूरा आश्रम में 1936 में दिवंगत हुए ।

इस महान् और विशिष्ट व्यक्ति के बारे में राष्ट्रभाषा हिन्दी के पाठकों को एकदम जानकारी नहीं है । डा.ए.बी. साई प्रसादजी ने अपने अनुवाद रचना 'काव्यकंठ गणपति मुनिवर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व' द्वारा इस आवश्यकता की पूर्ति बड़ी सफलता के साथ की है ।

129 पृष्ठों की इस पुस्तक में डा. साई प्रसाद ने काव्यकंठ गणपति मुनि के जीवन, व्यक्तित्व एवं कृतित्व की विशिष्टताओं को सरस और सरल शैली में सोदाहरण प्रस्तुत किया है । पुस्तक की अनुवाद शैली सरल एवं प्रवाहयुक्त है जो पाठक को अन्तिम पृष्ठ तक पढ़ते जाने के लिए बाध्य करती है ।

डा.ए.बी. साई प्रसाद तेलुगु, हिन्दी, अंग्रेजी, कन्नड, तमिल आदि भाषाओं के तथा उनके साहित्यों के मर्मज्ञ विद्वान हैं । उनकी मंजी हुई लेखनी द्वारा निःसृत इस रचना की अनुवाद शैली उपन्यास की शैली के समकक्ष है । मुनिजी द्वारा रचित संस्कृत श्लोकों को उद्धृत कर, डा. साई प्रसादने सराहनीय कार्य किया है ।

इस सत्प्रयास के लिए मैं डा.ए.बी. साई प्रसाद को हार्दिक बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि भविष्य में वे अपने रचनाकुसुमों से माँ भारती के मंदिर को सुसंपन्न एवं सुवासित करें ।

408, गांधी नगर
हैदराबाद-500 080

डा. भीमसेन निर्मल
आचार्य एवं प्राक्तन अध्यापक,
एमिरेट्स प्रोफेसर,
उस्मानिया विश्वविद्यालय,
हैदराबाद.

अपनी बात

ज्येष्ठ भ्राता समान श्री राविनूतल श्रीरामुलु जी के वात्सल्यपूर्ण आग्रह पर श्री आर. नागराज द्वारा रचित इस कन्नड ग्रंथ-काव्य कंठ वसिष्ठ गणपति मुनिगळु-का हिन्दी अनुवाद मैंने किया है । इस महा मनीषी की जीवनी से अनभिज्ञ हिन्दी जगत को उन के व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचय कराने का भार मैंने अपने भुजस्कंधों पर ले लिया है । इस अनुवाद कार्य को अपना परम सौभाग्य मान कर मैंने पूरा किया है । आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास भी है कि हिन्दी जगत् इस का सहर्ष आह्वान करेगा ।

आनेकल (कर्नाटक) के महा-विद्यालय के प्रिन्सिपाल पद से अवकाश प्राप्त सक्रिय पत्रकार श्री आर. नागराज जी का मैं आभारी हूँ । अपनी सुन्दर रचना-काव्य कंठ वसिष्ठ गणपति मुनिगळु-का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत करने के लिए उन्होंने मुझे अप्रतिबंध अनुमति दी है । इस अनुमति के लिए मैं श्री नागराज जी का सदा ऋणी रहूँगा ।

मेरे इस पुस्तक के लिए आमुख लिखने की प्रार्थना को स्वीकार कर सानंद आशंसा सत्वर लिख भेजने वाले मेरे गुरु तुल्य परम हितैषी डा. भीमसेन निर्मल (आचार्य एवं प्राक्तन अध्यक्ष, एमिरिटस प्रोफसर, उस्मानिया विश्व विद्यालय, हैदराबाद) जी को नतमस्तक होकर प्रणाम कर रहा हूँ ।

अनुवाद करते समय मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि दक्षिण के सुप्रसिद्ध चित्रकार एवं चित्रपट निदेशक श्री बापु जी काव्य कंठ गणपति मुनिवर जी का लाइन ड्रायिंग खींच कर देंगे । मित्र डा. गोपालन (आचार्य तेलुगु विभाग सर त्यागराया कालेज, मद्रास-600 021) की सहायता को इस संदर्भ में मैं भूल नहीं सकता । श्री बापु जी का मैं सदा सदा के लिए आभारी रहूँगा ।

पुस्तक प्रकाशन हेतु आर्थिक सहायता पहुँचानेवाले तिरूमल तिरूपति देवस्थानम् के अधिकारियों को मैं अपने हृदयपूर्वक धन्यवाद प्रकट करता हूँ ।

यह तो सौभाग्य की बात है कि चिरंजीव दिवाकर जैसे उद्यमी युवक ने छपायी का काम किया है । 'कंप्युप्रिन्ट' के युवा मंडली को भगवान बालाजी लंबी आयु प्रदान करें ।

सर्वे जनाः सुखिनो भवतु ।

मद्रास-101.
27.8.95

- ए.बी. साई प्रसाद

काव्य कंठ गणपति मुनिवर :

(व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचय)

पूर्वज :

बोब्बिलि (Bobbili) आंध्र प्रदेश का एक इतिहास प्रसिद्ध शहर है । इस शहर के पास 'कलुवराई' नामक एक गांव है । इस गांव की अपनी एक विशेषता है । पानी में खिलने वाली कोई (कुमुदनी) को पत्थरों के बीच खिलते देख लोगों ने इस गांव का नाम कलुव (कोई) राई (शिला या पत्थर) रखा था । काव्यकंठ गणपति मुनिवर इसे गांव के 'कोई' है ।

अय्यल सोमयाजुलु के कुटुम्ब में एक अंकुर प्रस्फुटित हुआ जो अपने पांडित्य प्रतिभा श्रद्धा एवं भक्ति के लिए विश्व विख्यात हुआ । अय्यल सोमयाजुलु के घरांगन की कलि खिलकर अपनी सुरभि से सबको मोहित करने लगी थी । सुगंध से परिपूर्ण इस पुष्प को दुनियावाले काव्य कंठ गणपति मुनिवर के नाम और रूप से जानते हैं । वास्तव में काव्य कंठ गणपति मुनिवर 'नायना' (पिता या बड़े बुजुर्ग को तेलुगु में 'नायना' कहते हैं) होनहार बिरावन के चिकने पात थे ।

गणपति मुनिवर के पूर्वज तमिलनाडू के कुम्भकोणम् के रहने वाले थे । सोलहवीं सदी में वे प्रवासी बनकर आंध्र प्रदेश के नन्द्याला (Nandyala) पहुँचे थे । वहाँ से वे गोदावरी जिले के वक्कलंका (Vakkalanka) में आ बसे । कुछ वर्षों के उपरांत वे श्रीकाकुलं (SriKakulam) के नंदबल गांव के स्थिर निवासी बन गये थे । जानकी परिणयम नामक संस्कृत नाटक के कवि श्री

रामभद्र दीक्षित जो कि सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ एवं भक्त शिरोमणि सदाशिव ब्रह्मेन्द्र के समकालीन थे, श्री नायना जी के पूर्वज थे । नंदबल गांव में बसने वाले अय्यल सोमयाजुलु परिवार के प्रथम व्यक्ति श्री जगन्नाथ शास्त्री थे । कुमुद उपलम् याने कलुवराई नंदबल ग्राम के समीप का और एक ग्राम है । श्री गटि सर्वप्प शास्त्री जी इस गांव के संपन्न मुखिया थे । अपनी इकलौती बेटिया का विवाह श्री सर्वप्प शास्त्री जी नंदबल गांव के जगन्नाथ शास्त्री से करना चाहते थे । जमीन जायदाद देकर वे जगन्नाथ शास्त्री को कलुवराई आ बसने का निमंत्रण भी देना चाहते थे । पर असामयिक मृत्यु के कारण वे अपनी योजना को आचरण में रख नहीं पाये। पर श्री सर्वप्प शास्त्री जी की धर्मपत्नी ने अपने गोलोकवासी पति की इच्छा की पूर्ती की । श्री सर्वप्प शास्त्री जी के दामाद और उत्तराधिकारी बन जाने के कारण श्री जगन्नाथ शास्त्री कलुवराई के मुखिया भी बन गये । श्री भीमाशास्त्री, श्री जगन्नाथ शास्त्री जी के एकमात्र पुत्र थे । श्री भीमाशास्त्री के तीन पुत्र हुए - नरसिंहशास्त्री, सर्वेश्वरशास्त्री और प्रकाश शास्त्री । शास्त्रीयों का वैदिक परिवार था । इस परिवार की अपनी एक नीति थी। इस नीति के अनुसार श्रीविद्या मंत्र दीक्षा देने का हक मात्र पिता के पास था । इस परिवार के ज्येष्ठ पुत्र श्री नरसिंह शास्त्री अपनी विद्वत्ता एवं सदाचार के कारण आस पास के गांवों में पर्याप्त नाम कमा चुके थे । वे भ्रमण एवं तीर्थाटन के इच्छुक थे । तीर्थाटन के कारण श्री नरसिंह शास्त्री ने ज्ञानार्जन भी किया था । लोग श्री नरसिंह शास्त्री का आदर सत्कार उनके ज्ञान एवं सज्जनता के कारण करने लग गये थे ।

वैदिक घराने में जन्में निष्ठावान श्री नरसिंह शास्त्री एक देश भक्त भी थे । शासक अंग्रेजों के अत्याचारों को देख वे अकसर दुखी होते थे । वे चाहते थे कि भारत फिर एक बार गौरव के गौरीशंकर की चोटी पर पहुँचे । गतवैभव को वे एक बार

और वापस लाना चाहते थे । उनका विचार था कि वैदिक धर्म के पुनरुत्थान के द्वारा ही यह संभव हो सकता है । गुलामी के जंजीरों को तोड़ कर प्राचीन भारत के ऋषि-मुनियों के जीवन्त संदेश को देश के चारों ओर फैलाने वाले एक सुपुत्र को प्रदान करने के लिए श्री नरसिंह शास्त्री भगवान से प्रार्थना किया करते थे । उनकी धर्मपत्नी नरसमाबाजी की भी यही इच्छा थी । थोड़े समय के बाद उन के यहाँ पुत्रोदय हुआ । दंपतियों ने अपने इस पुत्र का नाम भीमाशास्त्री रखा । दंपतियों को बहुत जल्द निराशा हुई । अपने पुत्र भीमाशास्त्री में वे दैवी गुण देख नहीं पाये । इतना ही नहीं वह अनारोग्यका शिकार भी था । अपने कुलदैव श्री सूर्यनारायण स्वामी के मंदिर में श्री नरसिंह शास्त्री दंपतियों ने भीमाशास्त्री का चूड़ा संस्कार (Tonsure) करवाया । रात को नरसमाबा ने एक सपना देखा । एक सुन्दर स्त्री ने प्रज्वलित अग्नि समान चमकनेवाले एक स्वर्ण पात्र को दिया । पात्र देकर वह स्त्री अदृश्य हो गयी । नरसमाबा ने उस पात्र को अपनी गोद में रख लिया । तत्काल पात्र पुत्र बन गया । अपने इस सपने के बारे में नरसमाबा ने श्री नरसिंह शास्त्री को बताया । श्री शास्त्री ताड गये कि सूर्यनारायण की कृपा से सूर्यसमान तेजस्वी पुत्र को नरसमाबा जन्म देनेवाली है । नरसमाबाने शीघ्र ही गर्भ धारण किया । गर्भधारण की बात सुन श्री नरसिंह शास्त्री काशीयात्रा के लिए घर से निकले ।

काशी में एक विचित्र घटना घटी । एक दिन की बात है । संध्या का समय था । काशी के धुन्डी गणपति मंदिर में पलथी मार श्री नरसिंह शास्त्री ध्यान मग्न बैठे थे । एक अद्भुत दृश्य को उस दिन (17.11.1878) श्री शास्त्री जी ने देखा । गणपति की मूर्ती से एक सुन्दर शिशु निकल कर श्री नरसिंह शास्त्री जी की गोद में आकर बैठ गया । पर आंखे खोलकर देखते ही वह शिशु गायब हो गया । शास्त्री जी ने अनुमान लगाया कि

भगवान की कृपा से उन के यहाँ पुत्र का जन्म हुआ होगा । श्री शास्त्री जी अपने गांव की ओर बढे । उन का अनुमान ठीक निकला । काशी के धुन्डि गणपति के आशीर्वाद फल होने के कारण श्री नरसिंह शास्त्री ने अपने इस लडके का नामकरण सूर्य गणपति के रूप में किया । क्योंकि वे वशिष्ठ गोत्रज थे इस लिए लडको को वशिष्ठ गणपति शास्त्री का नाम मिला । श्री वशिष्ठ गणपति शास्त्री के आध्यात्मिक गुरु भगवान रमण महर्षि इन्हें ' नायना ' कहकर प्रेम और गौरव से बुलाते थे । इस लिए वशिष्ठ गणपति मुनिवर को लोग नायना कहकर पुकारने लग गये ।

II बाल्य :

गणपति मुनिवर देवांश संभूत थे । पिता श्री नरसिंह शास्त्री ने सोचा कि बालक गणपति भी कृष्ण की तरह बाल लीलाओं को दिखाएगा । उनकी पत्नी नरसमांबा का भी यही विचार था । पर उनका गणित गलत निकला था । बालक गणपति एक स्वस्थ शिशु नहीं था । शिशु ज्वर और पित्तज्वर का शिकार बन गया था । शिशु को बेसुध का रोग भी था । वह कभी कभी बेहोश हो जाता था । गणपति मुनिवर की आयु छः वर्ष की थी । एक दिन गणपति मुनिवर जी का माथा और पेट (ऊपरी भाग) तपे हुए लोहे से दागा गया । उस दिन से वे ठीक होने लग गये थे ।

गणपति शास्त्री जी के चाचा श्री प्रकाश शास्त्री एक गांव के अध्यापक थे । ये ही गणपति शास्त्री के प्रथम गुरु थे । अक्षरराध्यास (वर्णमाला सीखना) के बाद गणपति शास्त्री ने बालरामायण को कंठस्त किया । शिव सहस्रनामावली और बालरामायण के सैकड़ों पंक्तियाँ उन को याद थी । दस वर्ष के बालक गणपति शास्त्री को काव्य, गणित, खगोल आदि आदि का पर्याप्त ज्ञान था । इतनाही नहीं वे वार्षिक तिथिपत्र अर्थात् पंचांग तैयार करने की स्थिति में पहुँच

गये थे । ज्योतिष शास्त्र के गणपति मुनिवरजी खनि थे । अपने दसवें वर्ष में चौतीस संस्कृत श्लोकों की रचना कर अपने गुरू एवं चाचा प्रकाश शास्त्री को गणपति मुनिवर ने चकित किया था। ज्वर के कारण माता पिता को दुख देने वाले और परिवार के बंधु बांधवों के परिहास के शिकार श्री गणपति मुनिवर देखते देखते सबकी प्रशंसा के पात्र बन गये ।

गणपति मुनिवर को जन्म देने के बाद माता नरसमांबाने कुल तीन शिशुओं को जन्म दिया । उन के नाम हैं अन्नपूर्णा, शिवराम शास्त्री और नरसिंहशास्त्री । फिर एक बार नरसमांबा ने गर्भ धारण किया । अब की बार उन्होंने जुड़वा बच्चों को जन्म दिया । दुर्भाग्य से माँ और नवजात शिशुओं का देहावसान हो गया । गणपति मुनिवर जी के लिए माँ की मृत्यू असहनीय आघात के समान था । फिर भी उन्होंने अपने आप को संभाला । बहुत शीघ्र अपने मन को अध्ययन में लगाया । श्री वेदुल वेन्कट राय शास्त्री के शिष्य बनकर व्याकरण और भारवी का अध्ययन किया । बारह वर्षीय बालक गणपति शास्त्री जी का विवाह बोमिकपाडु (Bomika Padu) ग्राम की कन्या विशालाक्षी से संपन्न हुआ । बोमिकपाडु कलुवराइ के पास वाला गांव ही था । विवाह के बाद कालिदास कृति मेघसंदेश की तरह भृंगसंदेश (भ्रमर संदेश) काव्य की रचना इन्होंने की थी । चौदह साल तक पहुँचते पहुँचते गणपति शास्त्री ने काव्य, चम्पू, नाटक, अलंकार शास्त्र आदि का सांगोपांग ज्ञान प्राप्त किया । इस अध्ययन के बाद व्याकरण और अलंकार शास्त्र के प्रौढ भाग का भी इन्होंने मनन किया । पुराणेतिहासों का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर अपने अठारहवें साल में गणपति मुनिवर जी अष्टावधानी बन गये (आठ आठ सवालों पर एक साथ ध्यान देते हुए उन के उत्तर एक के बाद एक देने वाले को अष्टावधानी कहते हैं । यह एक बौद्धिक व्यायाम है । आंध्र प्रदेश के पंडित इस के मर्मज्ञ हैं । यह साहित्यिक प्रक्रिया संस्कृत की देन है ।)

गणपति शास्त्री जी को महाभारत के अध्ययन में विशेष रुचि थी । आध्यात्मिक साधना और काव्य रचना के द्वारा जन सेवा करने की इच्छा इनको बचपन से ही थी । अबतक पिता श्री नरसिंह शास्त्री जी से भी दीक्षा ले चुके थे । जप तप में अपने अधिक समय को बिताने की इच्छा से घर छोड़ कर एक सुदूर शांत प्रदेश जाने के वे इच्छुक थे । पर वे इस बात में विश्वास नहीं रखते थे कि आत्मोद्धार के लिए घर बार, बाल बच्चे, अपने पराये सब को तज कर जाना है । वे गेरूआ रंग के वस्त्रों के धारण के पक्ष में भी नहीं थे । वे जानते थे कि हमारे ऋषि मुनि लोगों ने तपस्-सिद्धि के लिए गृहस्थाश्रम को नहीं तजा था । घर गृहस्थी को निभाते हुए ही वे आध्यात्मिक उन्नति करने में सफल हुए थे । उनकी दृष्टि में स्त्री मात्र भोग वस्तु नहीं थी । वे उनको सही अर्थ में सहधर्मचारिणी मानते थे । बस इस आदर्श का पालन करने का निश्चय श्री गणपति मुनिवर जीने किया । आध्यात्मिक साधना के लिए बारह महीनों में से छः महीने बाहर रहने की अनुमति गणपति मुनिवर ने अपने पिता से ली। पत्नी विशालाक्षी भी इस बात से सहमत हुई थी । अपने पति की उन्नति, विशेषकर आध्यात्मिक क्षेत्र में उन्नति के पक्ष में विशालाक्षी जी थी । उन का झुकाव भी इसी तरफ था । एक दो बच्चों को जन्म देने के बाद जप तप के क्षेत्र में आगे बढ़ने की अनुमति वे भी बड़ों से ले चुकी थी । इसी प्रकार उन्होंने अपने जीवन को निभाया भी था । यह बात हम आगे के पन्नों में देख सकते हैं ।

III तपस्या के लिए देशाटन :

गणपति मुनिवर की पत्नी विशालाक्षीजी कोई साधारण स्त्री नहीं थी । श्री विद्या और गणपति मंत्र दीक्षा वे भी ले चुकी थी। जप - ध्यान और घर-गृहस्थी के कामों में अपने समय को समान

रूप से वे बांट चुकी थी । एक बार विशालाक्षी जी के ससुरजी नरसिंह शास्त्री ने उनकी साधना के बारे में पूछताछ किया । उन्होंने जवाब दिया कि मैं विद्या देवी का ध्यान और गणपति की पूजा कर रही हूँ । जवाब सुनकर गणपतिजी अति प्रसन्न हुए । पर पति देव गणपति मुनिवरजी को अपनी पत्नी की साधना पर इतना भरोसा नहीं था । वे अपनी पत्नी के आराध्य देव गणपति बनना चाहते थे । इसलिए दीर्घ एवं कठिन तपस्या के मार्ग को चुनकर दैवत्व को प्राप्त करने का निश्चय उन्होंने कर लिया । बस तब से वे तपस्या के लिए उचित स्थान को ढूँढने के कार्य में लग गये ।

गणपति मुनिवर के दो भाई - भीमाशास्त्री और वेन्कट शास्त्री अध्यात्मिक साधना में उनका साथ देना चाहते थे । इस लिए वे भी उनके साथ राजमंड्री (Rajamundry) आये । नदी (गोदावरी) पार कर उनको एक गांव पहुँचना था । ग्राम पहुँचते पहुँचते दोनों भाईयों का उत्साह एक दम पिघल गया । वे दोनो कलुवराई वापस लौट गये । पर गणपति मुनिवरजी हृदय को हारे बिना अनेक गांवों को और अनेक कठिनाइयों को पार करते हुए काशी क्षेत्र की ओर बढ़ते जा रहे थे । चलते चलते वे दुसि (Dusi) गांव पहुँच गये । उस गांव के एक भलमानस ने महाभारत का पारायण टीका सहिता करने का अनुरोध किया । मुनिवर मान गये और पारायण को सटीका पूरा किया । बदले में पर्याप्त प्रशंसा धन मिला ।

दुसि से मुनिवर जी तेक्कली (Tekkali) पहुँचे । वहाँ के रामदास पंतुलु के यहाँ वे अतिथि बन कर रहे । अपने ज्योतिषशास्त्रज्ञान को प्रदर्शित कर मुनिवरजी रामदासपंतुलु के प्रशंसा पात्र बने । तेक्कली धर्मशाला में कुछ दिनों के लिए ठहरे हुए थे । वहाँ उनका परिचय कृष्णम नाइडु नामक धनवान से हुआ जो वास्तव में उस धर्मशाला के मालिक थे । उनकी जन्म पत्री पढ़ मुनिवरजी ने

उनको बताया कि जिस रोग से वे दीर्घकाल से पीड़ित हैं उस से शीघ्र ही उनको मुक्ति मिलनेवाली है । जैसा मुनिवर जीने बताया था ठीक उसी तरह नाइडूजी चगे हो गये । उनकी प्रतिभा से प्रभावित नाइडूजी ने उनका सम्मान किया । उन को मालूम हुआ कि मुनिवर जी काशीयात्रा के लिए निकले हैं । नाइडूजी ने मुनिवर जी को समझाया कि उनकी आयू तीर्थ यात्रा के लिए उपयुक्त नहीं है । उनका कहा मानकर उस साहसपूर्ण कार्य को छोड़ने का अनुरोध किया । नाइडूजी के अनुरोध पर मुनिवरजी कलुवराई की ओर बढे ।

IV जीवन का लक्ष्य :

यों तो तेक्कली के नाइडूजी का कहा मानकर मुनिवर जी वापस कलुवराई लौट आये थे पर उनका मन तपस्या में रमा था । एक दिन की बात है । गणपति मुनिवरजी जप मंत्र में मग्न थे । तब उन को लगा कोई श्वेतांबर धारी लंबी दाढ़ी वाली एक आकृति मानो उस के सामने खड़ी है । उस आकृति ने मुनिवर से तमिल भाषा में इस प्रकार कहा : “ पिछले कई जन्मों से हम दोनों याने तुम और मैं एक साथ तपस्या करते आ रहे हैं । इस दृष्टि से हम दोनों में निकट संबंध है । मैं भद्रक हूँ और तुम गणक हो । इस कम उम्र में ही तुम को तपस्या करनी है ” । इसे सुनते ही गणपति मुनिवर जी के मन में तपस्या के लिए तुरंत निकलने की इच्छा और भी बलवती हो गई । पिताजी की अनुमति लेकर अपने बीसवें वर्षगांठ के दिन (18 नवंबर, 1897) घर छोड़ कर काशी तपस्या के लिए रवाना हुए । बिना कोई अडचन के आराम से गणपति मुनिवर जी काशी पहुँचे । काशी में पद्मनाभ शास्त्री नामक एक सज्जन से वे मिले । श्री पद्मनाभ शास्त्री ने भविष्य वाणी की कि आगे गणपति मुनिवर जी दैवशक्ति से महातपस्वी और यशस्वी बनेंगे । इस वाणी को

सुनकर गणपति मुनिवरजी और भी उत्साही हुए । गंगा नदी के तट पर वाले शंखमाधव मंदिर में तपस्या करने लग गये । रात भर शिवमंत्राक्षरी का जप करते थे और दिन भर ध्यान । अन्न और गरम कपड़ों की कमी थी । फिर भी गणपति मुनिवर ने तपस्या को चालू रखा । पूरे गंगातट को वे छान मारा करते थे । उनका विश्वास था कि तपस्या के मर्मज्ञ कोई महात्मा उन का मार्गदर्शन अवश्य करेगा । एक ब्रह्मचारी का कहा मानकर श्री मुनिवरजी ने हंसतीर्थ नामक एक एकांत प्रदेश को अपनी तपस्या के लिए चुन लिया । वहाँ तप करने वालों की देखभाल और सुरक्षा का प्रबंध अयोद्या के महाराज किया करते थे । पर वहाँ के शोर से तंग आकर विन्ध्य की तरफ आये । वहाँ पहुँच कर अपनी अधि देवता नंदा देवी की प्रार्थना करने लगे । पर लगन और शांति से उस की तपस्या नहीं हो रही थी । एक भय उन को खाया जा रहा था । इस भय से मुक्ति पाने के लिए नंदा देवी की प्रार्थना की :

अवध्य विन्ध्य भूमिभृत्

ततालय दयावती

विचार धौत चेतसाम्

लयं भयं व्यापोहति

इस के बावजूद भी विन्ध्याचल में रहने के लिए उन का जी नहीं चाह रहा था । गंगा पार कर वे फिर काशी आ गये । काशी में उन के एक नाते दार रहते थे । उन का नाम आर्य सोमयाजुलु भवानीशंकर था । उन्हीं के घर उन के अतिथि बन कर गणपति मुनिवरजी रहने लगे । काशी विश्वनाथ और अन्नपूर्णेश्वरी का दर्शन कर घर वापस लौट रहे थे । रास्ते में उन की भेंट संस्कृत के प्रकांड पंडित और दर्भंगा महाविद्यालय के अध्यक्ष श्री शिव कुमार से हुई । शिवकुमार जी गणपति मुनिवर की प्रतिभा विद्वन्ता और कविता करने के सामर्थ्य से बहुत प्रभावित हुए ।

गणपति मुनिवर से उन्होंने बंगाल के संस्कृत केन्द्र नवद्वीप पहुँचकर अपनी प्रतिभा को प्रदर्शित करने के लिए कहा । इतना ही नहीं इस का परिचय कराते हुए वहाँ के संस्कृत परिषद के नाम उन्होंने एक पत्र लिखकर उन को दिया । नवद्वीप यात्रा के लिए अभी समय था । इस लिए वे भवानी शंकरम् जी के घर पहुँचे । अपने समय को वे जप-तप में बिताने लग गये।

एक दिन गणपति मुनिवरजी ध्यान मग्न बैठे थे । एक मोटा तगड़ा काला ब्राह्मण उस के सामने आकर खड़ा हो गया । उस आगतुक ने कहा : “ भद्रक के समान मेरा भी तुम से पुराना संबंध है । लोग मुझे सुकेतु या दुर्गा मंदिर के योगि के नाम से जानते हैं । घोर तपस्या के नाम पर अपने इस शरीर को अधिक कष्ट मत दो । साधना के मार्ग के सभी अडचनों को पार करना होगा । तुम गणक अर्थात् गणपति के अंश से जन्मे हो । सब विघ्नों को दूर कर लो । ” मार्ग दर्शनकर वह व्यक्ति ओझल हो गया । उसी दिन रात को गणपति मुनिवर ने एक सपना देखा । सपने में गणपति मुनिवर का सामना एक यात्रिक से हुआ । गणपति मुनिवर को लगा मानो वह यात्रिक (पथिक) उन से काशी छोड़कर नासिक के समीपवाले त्रयंबक में तपस्या करने के लिए कह रहा है । गणपति मुनिवर ने अनुभव किया कि अब उनको एक लक्ष्य मिल गया है । तपस्या के मार्ग के सब अडचने अब दूर हो गये थे । अपने स्वप्नवृत्तांत के बारे में गणपति मुनिवर ने कलुवराई में रहने वाले अपने पिता को लिखा । अपने नाते दार भवानीशंकर जी की अनुमति लेकर वे नासिक के लिए रवाना हुए ।

V कष्टों से झड़पा-झड़पी :

गणपति मुनिवर नासिक पहुँचे । नासिक उस स्थान का नाम है जहाँ राम के भाई लक्ष्मण ने रावण की बहन शूर्पणखा के नाक कान काटे थे । गांव के उपातिक नदी के पास लक्ष्मणजी

का मंदिर है । आज भी लोगों का विश्वास है कि ये लक्ष्मणजी के कोप का शिकार बनते ही रहेंगे । गणपति मुनिवर के नासिक पहुँचने के पहले ही वहाँ चेचक फैल गया था । स्वास्थ्य विभाग के अधिकारियों ने गणपति मुनिवर जी को नासिक में प्रवेश करने के लिए अनुमति नहीं दिया । जैसे ही उन को गणपति मुनिवर जी की विद्वत्ता और कार्य-सामर्थ्य का पता चला तो शहर में प्रवेश करने की आज्ञा दे दी । वहाँ के शोर शराबा या हल्ला गुल्ला से गणपति मुनिवर का मन ऊब गया । इस लिए त्रयंबक क्षेत्र पहुँचे जो नासिक से अठारह मील की दूरी पर है । त्रयंबक गोदावरी नदी का उद्गम स्थान है । वहाँ का ब्रह्मगिरि क्षेत्र मानव के सिर पर रहने वाले ब्रह्मरंध्र का संकेत माना जाता है । इस रंध्रके द्वारा मानव शक्ति और विश्वशक्ति का मिलन होता है । ब्रह्मगिरि के पासवाला कुशवर्त विश्व शक्ति के सहस्रों केन्द्रों का प्रतिनिधित्व करता है । त्रयंबक मानव के हृदय का संकेत है । शिवजी का यह आवास स्थान है । आध्यात्मिकता की ओर बढ़ने वालों के लिए त्रयंबक एक पवित्र तीर्थस्थान है । गणपति मुनिवर त्रयंबक क्षेत्र के नीलाबिका मंदिर में बैठ साधना करने लग गये थे । त्रयंबक के निवासी गणपति मुनिवरजी की साधना और पांडित्य को देख कर मुग्ध हो गये थे । कई लोग उन से मिलने के लिए आया करते थे । उन मिलने वालों में रामभाऊ भी थे । रामभाऊ ने उन से वादा किया कि वे मुनिवरजी की तपस्या और साधना के लिए नासिक में उचित प्रबंध करेंगे । रामभाऊ ने मुनिवर जी से नासिक लौट आने के लिए प्रार्थना किया । मुनिवर मान भी गये थे । पर रामभाऊ ने अपने वचन को नहीं निभाया । मुनिवर जी ने नासिक शहर के उपरांत में रहने वाले लक्ष्मण मंदिर में रह कर अपनी साधना और तपस्या को आगे बढ़ाने का निश्चय किया । तपस्या को आरंभ करने वाले ही थे कि एक दुर्घटना घटी । मंदिर में प्रवेश करने वाले मुनिवरजी को मंदिर के पुजारी ने पकड़ कर खूब मारा और पीटा । कई गाली

गलौज भी उन्होंने सुनाई। मुनिवरजी भौंचक्के रह गये थे । वे जानना चाहते थे कि इस प्रकार का दंड उसे किस अपराध के लिये दिया जा रहा है। इस सवाल का जवाब न देकर पुजारी मुनिवरजी को एक न्यायाधीश के सामने घसीट कर ले जाने के लिए तैयार हो गया । ठीक उसी समय मुनिवर जी को जानने वाला एक व्यक्ति वहाँ आया । उसने मुनिवरजी के बारे में पुजारी को समझाया । माफी मांगने के लिए भी कहा । पर वह व्यक्ति अपने प्रयत्न में असफल रहा । मुनिवर के विरूद्ध मुकद्दमा न्यायालय में दाखिल हो गया । पुजारी के पाशविक व्यवहार से दुखी मुनिवरजी के मुख से निम्नलिखित श्लोक अपने आप निकल पड़ा :

ध्वस्व प्रध्वस्व मनुजा

क्षत विक्षत विग्रहा

किर्णं प्रकिर्णं पर्यता

नासिकेयम् भविष्यति

“ नासिक के लोगों का सर्वनाश हो । उन के देहों के कटे टुकड़ों से नासिक छा जाय ” ।

इस शाप को सुनते ही पुजारी की आंखे खुली । उस को अपनी गलती का अनुभव हुआ । मुनिवर जी भी अपनी जल्दबाजी पर पछतानें लगे । एक तपस्वी होकर भी वे अपने कोप या ताप को नियंत्रण में रख नहीं पाये थे इस बात का उन्हें दुख हुआ । बार बार तपस्या के मार्ग में अड़चन पैदा होने वाले इस नासिक को वे पहुँचे क्यों यह बात उन की समझ में नहीं आयी । लक्ष्मण मंदिर को छोड़ कर पास वाले एक जीर्ण मंदिर में बैठकर वे तपस्या करने लग गये । सत्तर दिनों के बाद मुनिवर जी ने अपने स्वप्न में इष्ट दैव महादेव जी को देखा । उनको लगा मानों महादेव जी उन्हें वापस कलुवराई जाने के लिए कह

रहे हैं । इस बीच मुनिवर जी का शाप अपना काम करने लग गया था । चेचक के कारण नासिक के हजारों लोगों की मृत्यु हुई । नासिक के आस पास वाले बड़े बड़े पेड़ तूफान के कारण जड़ सहित उखड़ गये ।

गणपति मुनिवर जी अपनी साधना को छोड़कर कलुवराई पहुँचे । अपने पिता नरसिंह शास्त्री जी को अपने इस भ्रमण के अनुभवों के बारे में बताया । “ एक अव्यक्त दैवशक्ति इन घटनाओं के पीछे जरूर है ” इस बात को बाप और पुत्र दोनों समझ गये थे ।

VI सिद्धियाँ :

गणपति मुनिवर अपना स्वस्थल पहुँच गये । उस समय उनकी पत्नी विशालाक्षी मायके गई हुई थीं । संभलने या पूरा करने के लिए घर में कोई विशेष काम नहीं था । पत्नी के लौट आने पर मुनिवरजी ने उनकी सहमति से अपनी आध्यात्मिक साधना को आगे बढ़ाने के लिए अब की बार भुवनेश्वर के लिए रवाना हुए । उन के साथ तपस्या करने के लिए इनके दो नातेदार - रामाशास्त्री और लक्ष्मी नारायण शास्त्री चल पड़े । पर बहुत जल्द, कठिन तपस्या को न कर पाने के कारण, वापस लौट गये । गणपति मुनिवर भुवनेश्वरी मंदिर पहुँचे । मंदिर के पिछवाड़े के प्रांत को उन्होंने पसंद किया । वहीं उन्होंने अपनी साधना को आरंभ किया । दिन में तपस्या और रात को ललिता सहस्रनाम का जाप किया करते थे । लगातार नौ सप्ताहों के लिए अथक तपस्या मुनिवर ने की । एक दिन रात को वे प्रसन्न चित्त से एक शिला पर बैठे हुए थे । तब देवी भुवनेश्वरी ने उनको अपना दर्शन लाभ दिया । अपने स्थान से उठकर देवी भुवनेश्वरी ने शहद से भरे एक पात्र मुनिवर को दिया । शहद का पान करते हुए पुलकित नेत्र और गात्र से मुनिवर ने देवी का दर्शन किया । देवी तो अदृश्य हो गयी थी पर मुनिवर के होठों पर शहद का मीठा स्वाद जैसे का तैसा था । उस दिन से मुनिवर की रचनाओं में एक अवर्णनीय मिठास ने घर कर लिया । वे एक दम सुन्दर और मधुर बन गये ।

भुवनेश्वर में और एक घटना भी घटी । वहाँ एक बूढ़ी रहा करती थी । एक दिन उस बुढ़िया ने एक अद्भुत स्वप्न देखा । स्वप्न में उसने अपने गोलोकवासी पति और गणपति के उपासक लंबोदरदास (Lambodar Das) को देखा । उन्होंने बुढ़िया से यह कहा कि मैं गांव के वासुदेव मंदिर के पिछवाड़े में हूँ । अपने लडके भास्कर दास को बुलाकर उस बुढ़िया ने कहा : जाकर वासुदेव मंदिर के पिछले भाग को देख आओ । अगर वहाँ कोई गणपति की नयीमूर्ति हो या कोई विशेष बात हो तो आकर उसके बारे में मुझे सूचना देना । भास्करदास ने उस प्रांत तक पहुँच कर उसे देखा । उस ने वहाँ गणपति मुनिवर को देखा । उन्ही के बारे में भास्करदास ने अपनी माँ को बताया । बुढ़िया जान गयी कि मुनिवर जी गणपति के अवतार हैं । उसने आपने लडके को मंत्रोपदेश पाने के लिए उनके पास भेजा । सब कुछ जान कर मुनिवर ने भास्करदास को दीक्षा प्रदान किया । ठीक उसी समय कलुवराई से उनको एक शुभ समाचार मिला । 13.12.1919 के दिन उनके यहाँ पुत्रोदभव हुआ था । समाचार सुनकर मुनिवर कलुवराई आ गये । पिता जी के आदेशानुसार मुनिवर ने अपने लडके का नाम महादेव रखा । अपनी पत्नी विशालाक्षी की बात मानकर मुनिवरजी नौकरी के लिए प्रयत्न करने लगे । कोत्त (Kotta) अग्रहारम (Agraharam - A Colony of Brahmins) की संस्कृत पाठशाला में एक जगह थी । मुनिवरजी ने पाठशाला कमेटी से प्रार्थना की कि वे संस्कृत अध्यापक के रूप में उनकी नियुक्ति करें । पर मुनिवर के पास अध्यापक का काम करने के लिए जिन योग्यता पत्रों की आवश्यकता होती है वे नहीं थे । इस लिए वह नौकरी इन को नहीं मिली । यह कैसी विडम्बना है । मुनिवर जी काव्य कंठ नाम से प्रसिद्ध कवि सार्वभौम हैं । पर एक साधारण पाठशाला का अध्यापक भी वे बन नहीं पाये थे ।

मुनिवर जी नौकरी से बढकर आध्यात्मिक साधना को अधिक महत्व देने वाले थे । इसलिए मुनिवर अपनी साधना को जारी रखने के लिए गोदावरी के तट पर के धवलेश्वरम् पहुँचे । रोज

एक या दो केले खाकर अपनी साधना और तपस्या में वे सदा मग्न रहा करते थे । पासवाले केसन कुरू (Kesana Kurru) नाम के एक गांव में एक नामी पंडित रहा करते थे । उन से मुनिवर जी ने तर्क और वेदांत को सीखा । जो साधरणतया दो वर्षों में सीखी जा सकती है उसे सिर्फ दो महीनों में मुनिवर जी ने सीखा । इसके बाद पाणिनी के सूत्रों का अध्ययन भी उन्होंने किया ।

सन् 1900 की बात है । आंध्र और उड़ीसा प्रांत के सीमांत में स्थित मंदास नामक एक प्रांत के राजा के दरबार में उगादि (चांद्रमान के अनुसार वर्ष का पहला दिन) के संदर्भ में आयोजित एक साहित्यिक कार्यक्रम में भाग लेने मुनिवरजी पहुँचे । मुनिवरजी की साधना और प्रतिभा से प्रभावित एवं आकर्षित राजा का पुत्र उन से शिव पंचाक्षरी मंत्र का उपदेश पाना चाहता था । राजा वैष्णव संप्रदाय को मानने वाले थे । दरबार के पंडित नहीं चाहते थे कि युवराज को शैव संप्रदाय की दीक्षा एक शैव दे । विवाद को तै करने के लिए पंडित सभा बुलायी गयी । अपनी असम्मति का कारण बताये बिना राज गुरु जी मुनिवर जी को अपने वाग्बंधन मंत्र से चुप कराना चाहते थे । पर उस कार्य में उनको सफलता नहीं मिली । राजगुरु की चाल जान कर मुनिवर ने उन को समझाया कि मंत्र सिद्धि के लिए मन को शुद्ध रखना है । इसके बाद राजा ने मुनिवरजी से नवद्वीप की पंडित सभा में भाग लेकर यशस्वी बनने के लिए अनुरोध किया । पहले से ही मुनिवर जी के पास पंडित परिषद में भाग लेने के लिए दिया गया परिचय पत्र था । इस पत्र को काशी के पंडित शिवकुमार ने दिया था । मंदास राजा के दरबार से मुनिवर जी नवद्वीप यात्रा के लिए निकले ।

VII पद और यश की प्राप्ति :

कंची (Kanchipuram) अमरावती (Amaravathi) नलंदा (Nalanda) उज्जैन (Ujjain) और नवद्वीप (Nav Dweep) प्राचीनकाल से भारत के प्रमुख शिक्षा एवं विद्या केन्द्रों के रूप में प्रसिद्ध हैं । बंगाल

का नवद्वीप आज भी अपनी प्रचीन वैभव को बनाये रखने में सफल है । आज भी भारत के विविध प्रांतों से विद्यार्थीगण शिक्षा एवं विद्या की खोज में नवद्वीप जाते हैं । वहाँ के संस्कृत परिषद द्वारा आयोजित परीक्षाओं में बैठकर उत्तीर्ण होकर पद और यश को पा रहे हैं । यहाँ के विद्वानों का अपना एक नाम है । जो सभा परीक्षाओं को चलाती है उस सभा को हरिसभा कहते हैं । प्रवेश और प्रौढ परीक्षाओं में जो प्रथम एवं प्रशंसनीय श्रेणि में उत्तीर्ण होते हैं उन को भारत के सारे के सारे विद्वान श्रेष्ठ विद्वान मानते हैं ।

गणपति मुनिवर जी यश पाने के लिए ही नवद्वीप आये हुए थे । अब की बार श्री सितकंठ वाचस्पतिजी परीक्षा मंडली के सचिव थे । उनसे मिलना कोई सामान्य बात नहीं थी । उनसे मुनिवर जी भेंट नहीं कर पाये थे । मिथिला नगर के पंडित गुलाबी झा की सहायता और काशी के पंडित शिवकुमार जी के परिचय पत्र के द्वारा मुनिवर जी वाचस्पति जी से मिलने में सफल हुए । मुनिवर जी ने वाचस्पति जी को उनके वहाँ आने का कारण भी बताया । अंबिकादत्त जी उस वर्ष के परीक्षा परिषद के अध्यक्ष थे । अंबिकादत्त जी को देखते ही गणपति मुनिवर जी ने वाचस्पति जी से संस्कृत में सवाल किया : को सौ महाशयः (ये महाशय कौन हैं) मन ही मन में मुस्कुराते हुए अंबिकादत्त जीने कहा : सत्वर कविता विता गौडोहं, कश्चिद् अंबिकादत्तः । कविता के रूप में दिये गये इस विवरण का जवाब मुनिवर जी ने कविता के रूप में देते हुए अपना परिचय दिया ।

गणपतिति कवि कुलपति ।

दकृतिक्षो दाक्षिणात्योहं ।।

दक्षिण प्रांत से आया हुआ मैं गणपति नामक कवि कुलपति हूँ । यहाँ न रुककर आगे बढ़कर श्री अंबिकादत्त जी के नाम को लेकर उन का उपहास करते हुए कहा : अंबिकादत्त जी आप

अंबिका के दत्तक पुत्र है । मैं उनका औरस पुत्र हूँ । दत्तजी ने मुनिवर जी को मंच पर बुला चार समस्याओं को (यहाँ समस्या का अर्थ समस्यापूर्ण प्रश्न से है) आधे आधे पद्य के रूप में दिया । मुनिवर जी से कहा गया कि उन समस्याओं की पूर्ति पद्य के रूप में ही वे करें । (दो चरणों को देकर बाकी दो चरणों को पूरा करने की एक प्रक्रिया समस्या पूर्ति है) । अंबिका दत्त जीने जो चार समस्याएँ दी थी वे इस प्रकार हैं

- (i) स्तन वस्त्रं परित्यज्य
वधूः श्वशुर मिच्छति
किंतु अनवद्य चरिता
(बहू ने अपने आंचल को हटाकर ससुर को चाहने लगी ।
पर वह चरित्र हीन नहीं है ।)
- (ii) वत्सरश्चै कदा गौरी
पति वक्तं नपश्यति
(साल में एक बार पार्वति अपने पति के मुख को नहीं
देखती) ।
- (iii) सूर्य शशांकेन
समम् विनश्नतु अमावास्या
(सूर्य चंद्र नहीं दिखायी देते हैं । पर तिथि अमावास्या अर्थात्
अमावस नहीं है ।)
- (iv) पिपीलिका चुंबति
चंद्र मंडलम्
(चींटी चंद्रमंडल का चुंबन कर रही है)

अनायास उक्त समस्याओं की पूर्ति गणपति मुनिवर ने इस प्रकार की :

- (i) हिडिंबा भीम दइता
निदाघ घर्म पीडिता
स्तनवस्त्रं

(वायु नंदन भीम की पत्नी हिडिंबा सूर्य की गर्मी को सह नहीं पा रही है । इस लिए स्तन वस्त्र अर्थात् आंचल को हटाकर ससुरजी पवन के लिए तरसती है । आगे मुनिवर ने कहा था : स्तन वस्त्र के बदले अगर उत्तरीयं अथवा ओढ़नी पद का प्रयोग होता तो वह पद्य के गाभीर्य को और बढ़ा सकता था ।)

(ii) चतुर थ्याम भाद्र शुक्लस्य

चंद्र दर्शन शंकया.....

(भाद्रपद मास के शुक्ल चतुर्थी जानकर चंद्र दर्शन के भय से पार्वती अपने पति के मुख को साल में एक दिन नहीं देखती है ।

(iii) राहुस्त्रिकोणेच गुरुस्तृतीये

कक्षत्र भवे च धरा तनूजः

लग्नेच कोशचै यदि बालक स्यात्

सूर्य शशाकेन समम्बिवक्ष

एक शिशु की जन्म कुंडली में राहू एक कोने में हो गुरू तीसरे स्थान में हो । कुज सातवे स्थान में और सूर्य और चंद्रलग्न स्थान में हो तो शिशु जी नहीं सकता ।

(iv) सतीवियोगेण विश्रण चेतसः

प्रभो शयानस्य हिमालय गिरौ

शिवस्य चूडकालिकम् सुधाशय ।

पिपीलिका चुम्बति चंद्र मंडलम्

(सती देवी ने दक्ष द्वारा आयोजित यज्ञ में आत्माहुति कर लिया । इस असहनीय दुख के कारण शिव हिमगिरि पर आ सो गये है । उनके सिर पर शोभित चंद्र भूमि को छूने लगा । उस समय चंद्र के शहद को चखने के लिये चीटियाँ चंद्र का चुबन करने लग गयी है)

समस्या पूर्ति के बाद दत्त जी ने गणपति मुनिवर की परीक्षा अब काव्यालोचन शास्त्र में लेना चाहा । रघुवंश और काव्य प्रकाश से एक एक श्लोक को चुन कर उनके सामने रखा । प्रथम श्लोक की साहित्यिक विशेषता गणपतिमुनिवर ने पहले समझाया। बाद दूसरे श्लोक को उन्होंने आलोचनार्थ लिया । उस की अलोचना करते हुए श्लोक के रसाभास का विवरण दिया । बातचीत के मध्य में मुनिवर जी ने एक शब्द का गलत उच्चारण किया । उस गलती की और गणपति मुनिवर की दृष्टि को आकर्षित करते हुए परिहास के साथ अबिकादत्त ने इस प्रकार कहा : मुनिवर जी आप के गद्य और पद्य दोष रहित है । पर यह बात आप के उच्चारण के पक्ष में नहीं कही जा सकती है । क्या आपने वाग्देवी की उपासना नहीं की है ? ” मुनिवर ने सोचा कि दत्त जी हद पारकर गये हैं । ईट का जवाब पत्थर से देने की बात उन्होंने सोची । दत्तजी के द्वारा कहे गये एक वाक्य को लेकर उस वाक्य के व्याकरण दोषों की गणना करते हुए कहा, दत्तजी, जो काव्य अमृत पान का आनंद देता है और जो काव्य शहद की रुचि से बढ़कर रुचिकर होता है वह काव्य लगता है आप के मुँह से नहीं निकल रहा है । अपनी प्रियतमा को अपने देह के वाम भाग देनेवाले शिवजी की क्या आपने पूजा नहीं की है। काव्य संबंधी चर्चा ने व्यक्ति निंदा के रूप को धारण किया। गुस्से में आकर दत्त जी ने मुनिवर को हाथी कहा । इतना ही नहीं अपने आप को इस हाथी का संहार करने वाला सिंह कहा । इस निंदा के बदल में मुनिवर ने दत्तजी को कौआ कहा । लालपीला होकर दत्त ने मुनिवर की तुलना जुगनू से किया । सितकंठ वाचस्पति सब को देख और सुन रहे थे । उन्होंने कहा : भइ इस परस्पर निंदा को छोड़ो । अब हो जाय कुल को लेकर थोड़ा हास्य-विनोद । दोनों बात को मान गये ।

भट्टो खलो पिवरि पारवधार्यः
निपीय मध्वा रभते विहारम्

(दक्षिण भारत के भट्ट लोग घर के छत पर मधु का पान कर अपने ही स्त्रियों से रमण करते हैं)

दत्तजी के कुल के बारे में झट मुनिवर ने कहा :

अयुव्यो वास्तु वसुव्यैयो वा
ह्यमी नमीन व्यसनम् त्यजति ।

गौड देश के लोग मछली के मोह को नहीं छोड़ते । मछली के लिए वे प्राण या धन को भी छोड़ने के लिए झिझकते नहीं। इस हास विनोद के उपरांत वातावरण में गंभीरता कम हो गयी । दत्त जी ने मुनिवर जी का पांडित्य और भाषा सामर्थ्य की भूरि भूरि प्रशंसा की । मुनिवर जी को नवद्वीप संस्कृत परिषद ने काव्यकंठ की उपाधि से विभूषित किया । उपाधि को देते समय यह बात कही गई कि परिषद के सभी विद्वानों से श्रेष्ठ विद्वान गणपति मुनिवर हैं । समर्पित प्रशंसा पत्र में इस प्रकार लिखा गया था : क्षीर सागर मंथन के अवसर पर संसार को काव्य लभ्य नहीं हुआ है । पर काव्य श्रेष्ठ व्यक्तियों के लिए अमृत पान के बराबर है । काव्य रचना में सामर्थ्य रखने वाले और दैव कृपा के पात्र व्यक्तियों को भूलोक वासी देवता के समान आदर और सत्कार करते हैं । अपनी असाधारण शक्ति के द्वारा आपने इस सभा को संतोष और गौरव को प्रदान किया है । आप को पाकर नवद्वीप गर्व का अनुभव कर रहा है । विशाखपट्टणम के पास वाले कलुवराइ से आये हुए श्री गणपति शास्त्री जी को निम्न लिखित श्लोक के द्वारा गौरवान्वित कर रहे हैं :

प्राचीनैस्तु कविकुल वरै :

कालिदासाध भिर्या

लब्धौ कीर्तिर्भव दानुगता

सैव भूयात् इदानीम्

सद्धिर्दत्तोय इह रूचिर :

काव्यकंठोपहार :

तेन श्रीमान् इहभुवि भवान्

उज्ज्वलश्चापि भायात्

प्राचीन काल के कालिदास और अन्य कवियों को जो ख्याति मिली थी वही आपको भी मिले । विद्वत जनो के द्वारा दिये गये इस काव्यकंठ नामक आभरण को पहनकर आप शोभा को पाइए ।

अपने को दिये गये प्रशंसा पत्र को मंदास के राजा के द्वारा अपने पिता श्री नरसिंह शास्त्री तक पहुँचाकर स्वयं काशी के लिए रवाना हुए ।

VIII काशी क्षेत्र :

मुर्शिदाबाद राज्य के दरबारी कवि गुलाबी झा के साथ गणपति मुनिवर जी नवद्वीप से मुर्शिदाबाद पहुँचे । मुर्शिदाबाद के दरबार में राजा ने मुनिवरजी का खास सम्मान किया । अपने दरबार में थोड़े समय के लिए रहने के लिए राजा ने मुनिवर जी से अनुरोध किया । राजा साहब को उचित रीति से समझाबुझाकर गणपति मुनिवर जी वैद्यनाथ (Vaidyanath) आये । वहाँ के एक मंदिर में रहकर अपनी साधना को मुनिवर जी ने आरंभ किया । शिव पंचाक्षरी के मनन और ध्यान में मुनिवर जी मग्न हो गये । वहाँ मुनिवर जी का परिचय सुरेशमित्रा नामक एक साधक से हुआ । मित्राजी से मुनिवर को मालूम हो गया कि तारामंत्र, मंत्रमहोदधि ग्रंथ में अपने शुद्ध रूप में नहीं है । मंत्र की सही दीक्षा मुनिवर ने सुरेशमित्रा जी से ली । मंत्र वा जाप वे निरंतर करने लग गये । एक दिन के स्वप्न में मुनिवर जी ने दूसरी बार महादेव जी को देखा ।

महादेव जी के द्वितीय दर्शन के उपरान्त उन से वैद्यनाथ में रहा नहीं गया । काशी विश्वनाथ दर्शन की लालसा जब बलवती हुई तो मुनिवर जी ने काशी पहुँचना चाहा । पर उनके पास पैसे नहीं थे । वैद्यनाथ क्षेत्र के पासवाले घरवाल रियासत के राजा से मिलकर मुनिवर जी ने उनसे अपने मन की बात कही ।

घरवाल के राजा पांसे के खेल के बहुत बड़े शौकीन थे । उन के दरबार में इस खेल के मर्मज्ञ आठ खिलाडी थे । गणपति मुनिवर ने दरबार के आठ खिलाडियों को एक साथ हराया । राजा बहुत खुश हुए । सिक्कों से भरी थाली स्वीकार करने के लिए राजा ने अनुरोध किया । यात्रा के लिए जितने पैसों की आवश्यकता होती है मात्र उतने पैसे लेकर काशी पहुँचे । विश्वनाथ जी का जी भर दर्शन किया । पर उन्होंने अनुभव किया कि अध्यात्म साधना के लिए वहाँ का वातावरण उतना उपयुक्त नहीं है । वहाँ से कानपुर पहुँचे । इस तरह तीन महीने उन्होंने तपश्चर्या में बिताये । कानपुर में उनका परिचय लक्ष्मण शास्त्री नामक एक व्यक्ति से हुआ । वे देखने में पागल जैसा दिखाई देते थे । पर थे ऊँचे दर्जे के ज्ञानी । उनका मुख्य उपदेश था :

“ यद्यत् पश्यति नेत्राभ्याम् तत्तत् ब्रहमेति भावया ”

अर्थात् जिस को तुम देख रहे हो उसे ब्रह्म समझो ।

IX दुबारा 'देशाटन' :

उत्तर के तीर्थ स्थानों में साधना मग्न मुनिवरजी को पिताश्री से बुलावा आया । पिताश्री की इच्छानुसार वे कलुवराई आये । गांववालों ने मुनिवरजी के आगमन के उपलक्ष्य में एक भव्य स्वागत का आयोजन किया । पिताश्री नेत्र रोग से पीडित थे । पंद्रह महीनों तक वे कलुवराई में ही रह गये । अपने समय को मुनिवर जी ने आयुर्वेद को सीखने में खर्च किया । आयुर्वेद का संपूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के बाद अपने पिताश्री के नेत्रों की चिकित्सा उन्होंने की । पिता श्री का नेत्र रोग दूर हो गया । इस के उपरांत नदीग्राम के कृष्णमनाइडू जी से और मंदास के राजा से उन को निमंत्रण मिला । सन् 1902 में पत्नी समेत मंदास आये ।

धूमधाम से मंदास में इनका स्वागत हुआ । सादगी पसंद तपोनिष्ठ मुनिवर जी ने इस स्वागत सत्कार में अति की मात्रा को देखा । विशालाक्षी जी का मन भी महाराणी जी के आदर सत्कार के कारण ऊब गया था । कुछ बहाना कर विशालाक्षी गांव वापस आ गयी । गणपति मुनिवर जी अपने भाई शिवराम शास्त्री समेत भुवनेश्वर आ गये । वहीं जप तप में अपने समय को बिताने लग गये । एक महीन के बाद मंदास के राजा के मित्र दंतवाणी (Dantavani) राजा के यहाँ से एक निमंत्रण आया । इस आह्वान को पाकर चंद दिनों के लिए मुनिवरजी दंतवाणी के राजा के घर में उनके अतिथि बन कर रहे । उन्हीं दिनों एक बार वे रेलवे स्टेशन जा रहे थे । अंधेरे के कारण वे विद्युत घात के शिकार बनने वाले ही थे । पर आकाश में कौंधी बिजली के कारण वे सामने वाले खतरे को देख पाये । इंद्र को अभार प्रकट करते हुए दोनों भाई रेलवे स्टेशन पहुँचे । उन की इच्छा कलकत्ता और कलकत्ता से प्रयाग पहुँचने की थी । अपनी योजना को बदल कर वे विजयवाडा (Vijayawada) पहुँच गये । कृष्णा नदी में स्नान कर कनक दुर्गा (Kanakadurga) देवी जी का दर्शन उन्होंने किया । वहाँ के शिवगंगा मठ के स्वामीजी ने मुनिवर जी का सत्कार किया । विजयवाडा से कालहस्ती (Kalahasthi) और कालहस्ती से कांचीपुरम (Kanchipuram) आये । कांचीपुरम में नारायण ज्योतिषी नामक एक नामी ज्योतिषी रहा करते थे । मुनिवर जी की ज्योतिष शास्त्र संबंधी पांडित्य को देखकर नारायण ज्योतिषी उन के शिष्य बन गये । कांची के पास बहने वाली नदी के किनारे एक पुराना मंदिर था । उस पुराने मन्दिर में तपस्या करने लगे । दोनों भाई घर वापस लौटना चाहते थे । पर नारायण ज्योतिषी ने उन दोनों से जम्बुकेश्वर (Jambukeswar) अरूणाचल (Arunachal) और चिदंबरम (Chidambaram) क्षेत्रों की यात्रा करने के लिए सुझाव दिया । अरूणाचल का नाम सुनते ही मुनिवर ने एक अव्यक्त आनंद का अनुभव किया । उन का शरीर एक दम पुलकित हो

उठा । सीधा वहाँ से अरूणाचल-तिरूवण्णामलै (Thiruvannamalai) पहुँचे । उन दिनों तिरूवण्णामलै में दशहरा का उत्सव चल रहा था । अरूणाचलेश्वर जी के दर्शन किये बिना ही मुनिवर देवी अपीत कुचमाम्बा के दर्शन के लिए निकल पड़े । देवी का अलंकार पुष्पो से किया गया था । जब मुनिवर ने देवी का दर्शन किया तब एक फूल देवी के सर पर से नीचे गिरा । मुनिवरजी ने समझा कि वे अनुग्रहीत हुए हैं । मुनिवर जी की आंखों से आनंद के आंसू झरने लगे । देवी जी के दर्शन के बाद वे अरूणाचलेश्वर जी के मंदिर पहुँचे । भगवान शिवजी के लिंग के सामने खड़े होकर वे प्रार्थना करने लगे । हाथ जोड़ प्रार्थना करते समय मुनिवर जी अपना सुध भी बिसर गये थे । अब उनको पूरा विश्वास हो गया कि वहीं उनको तपः सिध्दी मिलनेवाली है । मंदिर का ज्योतिलिंग पीछे रहने वाले अरूणाचल का संकेत है । इतना ही नहीं यह श्री चक्र का भी संकेत है । भूगर्भशास्त्रियों (Geologists) का कहना है कि यहाँ की भूमि का निर्माण बहुत पहले ही हुआ था । भूरचना की विविध श्रेणियों को आसानी से यहाँ जांचा जा सकता है । मुनिवरजी के आध्यात्मिक जीवन संबंधी नूतन अध्याय अरूणाचल में आरंभ हुआ ।

X अरूणाचल में

गणपति मुनिवर जी और उनके भाई शिवराम शास्त्री जी दोनों एक धर्मशाला में ठहरे हुए थे । वहाँ भोजन के लिए कोई व्यवस्था नहीं थी । इस असुविधा की परवाह किये बिना मुनिवर जी ने अपनी तपश्चर्या को आगे बढ़ाया । अरूणाचलेश्वर की स्तुति में 'हरसहस्रम्' नाम से एक हजार श्लोकों की रचना कर कृत्तिकोत्सव (कृत्तिका तीसरे नक्षत्र का नाम है ।) के समय मुनिवर जी ने भगवान को अर्पित किया । 'हरसहस्रम्' के श्लोकों के पठन को सुनकर तिरूवण्णामलै की आम जनता मंत्र मुग्ध हो गयी । मुनिवर जी के साहित्य प्रौढिमा के सामने वे नतमस्तक हो गये ।

उन्होंने मुनिवरजी से प्रार्थना की कि वे वहाँ की संस्कृत पाठशाला में संस्कृत के अध्यापक बने । मुनिवरजी के भाई शिवराम शास्त्री जी अब घर लौट गये थे । इस लिए नगरवासियों की प्रार्थना को मुनिवरजी ने स्वीकार किया । वे अध्यापक बनने के लिए तैयार हो गये । पर यहाँ एक कठिनता थी । मुनिवर जी तेलुगु भाषी थे । वे तमिल भाषा को जानते नहीं थे । फिर भी केवल दो सप्ताहों में लगन के साथ मुनिवर जी ने तमिल भाषा सीखी । शीघ्र ही वे संस्कृत को तमिल भाषा के माध्यम से पढ़ाने लग गये । उनकी विद्वता, गूढ़ातीगूढ़ विषयों को शीघ्र सीखने की शक्ति, उन की ग्रहण शक्ति इत्यादियों ने वहाँ के लोगों को आकृष्ट किया । अपने शिष्य विश्वनाथन् के साथ मुनिवर जी एक दिन अरूणाचल पहाड़ चढ़ने गये । पहाड़ पर विरूपाक्ष गुफा में रहने वाले एक ब्राह्मण स्वामी के बारे में वे सुन चुके थे । मुनिवर उन से मिलना चाहते थे । पहाड़ चढ़कर मुनिवर गुफा पहुँचे । पर स्वामी जी गुफा में नहीं थे । वे पास वाले पद्मनाभ स्वामी जी के आश्रम में थे । ब्राह्मण स्वामी को देखते ही मुनिवर जी को एक पुरानी बात याद आयी । उनको मालूम हो गया कि काशी के दुर्गामंदिर के योगी ने जिस महात्मा का वर्णन किया था, वे महात्मा यही हैं । उन को लगा कि अध्यात्म के क्षेत्र में ब्राह्मण स्वामी जी ऊँचे सोपान पर हैं । मुनिवर जी को देखते ही पद्मनाभ स्वामी ताड़ गये थे कि ये बहुत बड़े ज्ञानी हैं । उन्होंने मुनिवर जी से “ शुक्लांबरधरम् विष्णुम्..” श्लोक के अर्थ को समझाने के लिए कहा । अनेक देवी देवताओं पर इस श्लोक को लागू करते हुए मुनिवर ने इस श्लोक के अर्थ को ब्राह्मण स्वामी पर भी लागू करते हुए समझाया । उन्होंने कहा : ब्राह्मण स्वामी जी श्वेत कौपीन (लंगोटी) धारी हैं । इस दृष्टि से वे ‘ शुक्लांबरधर ’ हैं । इन की प्रज्ञा (ज्ञान) विश्वव्यापी होने के कारण ये विष्णु के समान हैं । चंद्र समान ये प्रकाशवान हैं । मन, इंद्रिय, लोभ एवं अहम् को जीत चुके हैं । इस दृष्टि से ये

चतुर्भुज हैं । हमेशा ये प्रसन्न चित्त रहते हैं । जो इनका ध्यान या सुमिरन करते हैं ये उनके दुखों को दूर करने वाले हैं ।” इस टीका अथवा व्याख्या को सुनकर ब्राह्मण स्वामी मन ही मन में मुस्कुराते रह गये ।

गणपति मुनिवर को ब्राह्मण स्वामी जी के दर्शन के कारण अपार आनंद का अनुभव हुआ । फिर भी एक प्रकार की अशांति उस के मन को खाये जा रही थी । उन को लग रहा था वास्तविक ज्ञान या भक्ति उन को अब तक प्राप्त नहीं हो पायी है । उनको यह भी लग रहा था कि साधना के फल उनको अब तक नहीं मिले हैं । मन में निराशा थी । इस बीच मुनिवर जी के एक शिष्य रामस्वामी ‘हरसहस्रम्’ की एक मात्र प्रति अपने साथ अपना गांव ले गये । वही उनका निधन भी हो गया था । इस तरह ‘हरसहस्रम्’ की प्रति खो गयी । यह मुनिवर जी की प्रथम कृति थी । दुर्भाग्य से यह प्रति खो गयी । अबतक मुनिवर जी की पत्नी और पुत्र तिरुवण्णमलै आकर उन्हीं के साथ रहने लग गये थे ।

XI आम जनता के साथ :

जब से मुनिवरजी अरूणाचल पहुँचे थे तब से उनके मन में एक बलवती इच्छा घर कर चुकी थी । परंपरागत रीति में वे ऋग्वेद का अध्ययन करना चाहते थे । उनको एक योग्य गुरु की भी तलाश थी । अरूणाचल में उनको एक गुरु मिल गया । कम समय में वे ऋग्वेद और भाष्यों के पारंगद बन गये ।

मुनिवर जी की विद्वत्ता काव्य प्रतिभा वेदशास्त्रों का ज्ञान आदि आदि ने तिरुवण्णमलै के बहुत लोगों को उन की ओर आकृष्ट किया । मद्रास जैसे सुदूर प्रांत से भी मुनिवर जी से मिलने के लिए विद्वत्जन आया करते थे । मद्रास से आनेवालों में मद्रास

उच्च न्यायालय के सदाचारी पुरुष रामस्वामी अय्यर नामक व्यक्ति भी थे । प्रथम दर्शन में ही रामस्वामी अय्यर ने मुनिवरजी के चरण उत्साह और आदर के साथ छुए थे । इतना ही नहीं अपने आप को मुनिवर जी के शिष्य के रूप में अर्पित करने की इच्छा भी प्रकट की थी । रामस्वामी जी के परदादा उपनिषद ब्रह्म जी उपनिषदों के भाष्यकार के रूप में अत्यंत प्रसिद्ध थे । उपनिषद ब्रह्मजी वास्तव में संगीत कलानिधि त्यागराजू या त्यागय्या (ThyagarajuorThyagaiah) के समकालिक थे । रामस्वामी जी का दृढ़ निश्वास था कि वे ही उपनिषद ब्रह्मेन्द्रजी आज गणपति मुनिवरजी का देह धारण कर आये हैं । इस विश्वास के कारण ही वे महीने में एक बार मद्रास से आया करते थे और उनका दर्शन किया करते थे ।

रामस्वामी अय्यर जी के आमंत्रण और अनुरोध पर मुनिवरजी एक बार उन के अतिथि बनकर मद्रास आये । वहाँ मद्रास में मुनिवर जी का परिचय पंचापकेश शास्त्री, वेदम् वेन्कट राय शास्त्री, टी. सुब्रह्मण्यम् अय्यर जैसे नामी व्यक्तियों से हुआ । मुनिवर जी की प्रतिभा से प्रभावित सुब्रह्मण्यम् अय्यर ने उन से एक ऐसे श्लोक की रचना करने के लिए कहा जो एक साथ शिवजी, पार्वती, गणपति और सुब्रह्मण्यम् पर लागू किया जा सके । तत्काल गणपति मुनिवर जी के मुख से निम्नलिखित श्लोक फूट पड़ा :

जगती धर जामाता
भवताम् भव्याय भूयसे भवतु
कंचिद् अकिंचनमपि
यद्विक्षा विदधाति शक्र समम्

जगतीधर जामाता जगतिधराजामाता थे दोनों पद शिवजी पार्वती के बारे में बताते हैं । उनके पुत्र हैं गणपति और सुब्रह्मण्यम् । पार्वती जी की कृपा से कंगाल भी इंद्र के समान बन सकता है । ऐसी माँ पार्वती की कृपा हम पर बनी रहे । मुनिवरजी के इस श्लोक की प्रशंसा सबने की थी ।

एक बार रंगय्य नाइडु नामके दो व्यक्ति गणपति जी से मिलने रामस्वामी के घर आये । दो में से एक रंगय्य नाइडु मद्रास क्रिश्चियन कालेज के तेलुगु विभाग के प्राध्यापक थे । अपने समय के ये ख्यात विद्वान भी थे । दूसरे नाइडु जी के हाथ में एक पुराना तालपत्र ग्रंथ था । वह रोग निदान संबंधी एक ग्रंथ था । तालपत्र ग्रंथ लाने वाले नाइडूजी चाहते थे कि मुनिवर जी उस ग्रंथ को पढ़कर ग्रंथ के श्लोको के अर्थ को उन्हें समझाए । संस्कृत जानने वालों को भी औषधी संबंधी शब्द समझ में नहीं आ रहे थे । अगर शब्दों को समझ भी सकते हैं तो समझा नहीं पाते थे । अगर वैद्य भी उस ग्रंथ को पढ़ते तो वे भी इस काव्य के चमत्कार को समझ नहीं पाते थे । अक्सर नाइडूजी इस ग्रंथ को विद्वानों के पास ले जाया करते थे । उन से वे समझाने के लिए प्रार्थना भी किया करते थे । बातें समझ में न आने के कारण जब हाथ मलते रह जाते तो उन की उस अवस्था को देखकर ये रंगय्य नाइडूजी खुश हो जाते थे । यह उनका अभ्यास सा बन गया था । नाइडूजी ने ग्रंथ को मुनिवर को सौंप कर अर्थ समझाने के लिए कहा । चंद मिनटों के लिए पूरे ग्रंथ का अध्ययन कर मुनिवर जी नाइडूजी के सवालो का जवाब देते चले गये । जैसे नाइडूजी ने सोचा था वैसे नहीं हो रहा था । अपने जीवन में पहली बार नाइडूजी का सामना एक सच्चे और ऊँचे विद्वान से हुआ था । दोनों व्यक्ति प्राध्यापक रंगय्य नाइडू और तालपत्रवाले रंगय्य नाइडू गणपति मुनिवर जी के शिष्य बन गए ।

गणपति मुनिवर जी रामस्वामी अय्यर के यहाँ अतिथि बनकर मद्रास आये थे । तब मुनिवर जी के पिता भी नेत्र चिकित्सा के लिए मद्रास आये हुए थे । वे भी गणपति मुनिवर जी के साथ तिरूवण्णामलै आये । वहाँ ब्राह्मण स्वामी जी का दर्शनकर वे कलुवराई लौट गये ।

दिन-ब-दिन मुनिवर जी को चाहनेवालों की संख्या बढ़ती गयी । रामस्वामी अय्यर और उनके मित्रगण मुनिवर जी की बहुमुखी प्रतिभा देखकर अंचभे में डूब जाने लगे थे । एक बार दोरस्वामी नामक एक मित्र ने मुनिवर जी का यथोचित सम्मान किया । ताम्बूल (सत्कार के समय दिया जाता है) को प्रदान करते हुए ताम्बूल के संबंध में एक श्लोक को बनाकर कहने की प्रार्थना की । तुरंत मुनिवर जी के मँह से यह श्लोक फव्वारे की तरह फूट पड़ा ।

सुधाधिक्यम् स्पृहे शत्रुः
फलाधिक्यम् स्पृहे भिषक्
पत्राधिक्यम् स्पृहे ज्जाया
मातातु त्रितयम् सपृहेत्

अर्थात् शत्रु चाहता है पान में चूना अधिक लगे । वैद्यजी चाहते हैं कि सुपारी की मात्रा कुछ ज्यादा हो । पत्नी की इच्छा होती है कि पानों की संख्या अधिक हो । पर माँ चाहती है कि इनतीन की निष्पत्ति एक समान हो ।

गणपति मुनिवर जी के कुछ शिष्य अंग्रेजी भाषा के प्रेमी थे । अंग्रेजी साहित्य और संस्कृत साहित्य की समानताओं को जानने के वे इच्छुक थे । गणपति मुनिवरजी अंग्रेजी साहित्य से अनभिज्ञ थे । इस लिये शेक्सपियर कृत माकबेथ (Macbeth) नाटक पढ़कर उनको समझाया गया । तुरंत मुनिवर ने ' डंकन नाम महीपतिहि समभवत् स्काटल्यांडू देशे पुरा ' कहा । इस वाक्य के बाद उसकी वाणी रुकी नहीं । बिना रूके वे लगातार धारा सम कविता कहने लगे थे ।

“ संस्कृत, लोगों का विचार है, एक मृत भाषा है । वह आम जनता की भाषा नहीं है । अंग्रेजी एक जीवंत भाषा है । भावों को प्रकट करने का जो सौलभ्य अंग्रेजी में है वह संस्कृत में

नहीं हैं”। संस्कृत के बारे में ये चंद कुकल्पनायें थीं । इन सब अफवाहों को गणपति मुनिवर जी ने दूर किया । पर इन बातों से कुछ शिष्यों को पूर्ण तृप्ति नहीं मिली थी । वे मुनिवर जी की और कड़ी परीक्षा लेना चाहते थे । वे खास कर उन की स्मरणशक्ति की परीक्षा लेना चाहते थे । मुनिवर जी की बहुमुखी प्रतिभा के सामने शिष्यों के जो थोथे सवाल रूई की तरह उड़ गये । इस घटना के बाद दोरस्वामी नामक शिष्य गणपति मुनिवर के आप्तवर्ग में शामिल हो गये । आगे वे सुधन्व नाम से प्रसिद्ध हुए ।

उस समय नारायण सुदर्शन नामक एक संस्कृत विद्वान कवि मद्रास आये । गणपति मुनिवर के समान ये भी बचपन से कविता करते आ रहे थे । इन की प्रतिभा से संतुष्ट पंडित इस को बाल सरस्वति भट्टा श्री नाम से पुकारने लग गये थे । मद्रास की एक सार्वजनिक समिति इन दोनों सज्जनों का सम्मान करने के लिए प्रबंध करने लग गयी थी । दोनों में से अधिक प्रज्ञाशाली को स्वर्ण कंकण से विभूषित करना भी चाहती थी ।

इस बीच ट्रिप्लिकेन (Triplicane) प्रौढ पाठशाला में गणपति मुनिवर जी के सम्मानार्थ एक सभा आयोजित हुई थी । अनेक प्रकार की साहित्यिक समस्याओं को देकर उन को पूर्ति करने के लिए मुनिवर जी से कहा गया । समस्याओं को देनेवालों में उस समय के सुप्रसिद्ध विद्वान नीलमेघ शास्त्री जी, वेदम् वेंकटराय शास्त्री जी जैसे महामहोपाध्याय भी थे । समस्या के चरणों को पूरा करने के लिए अवसर न देकर बाकी चरणों को उन से पहले ही कहकर वहाँ के विद्वानों को मुनिवर जी ने आश्चर्य चकित कर दिया ।

इस समारंभ के उपरान्त श्री वी. कृष्णस्वामी अय्यर की अध्यक्षता में एक सार्वजनिक समिति मैलापुर (Mylapore) में और एक बृहत सभा का आयोजन कर चुकी थी । उस सम्मान के अवसर पर एक अष्टावधान का भी आयोजन हुआ था । इस अवधान का एक अंग आशु कविता है । कम समय के अंदर एक पृच्छक

ने नल चरित्र से संबंधित सौ पद्यों को कहने के लिए कहा । सभाध्यक्ष कृष्णस्वामी अय्यर ने पृच्छक को गणपति मुनिवर जी की प्रतिभा एवं सामर्थ्य से अवगत कराते हुए कहा कि इस आशुकविता की परीक्षा की कोई आवश्यकता नहीं है । इस के बाद गणपति मुनिवर जी का घन सम्मान हुआ । अध्यक्ष जी का इस तरह बीच में दखल देना कुछ लोगों को अच्छा नहीं लगा । इसलिए और एक अष्टावधान सभा का आयोजन डा.यम.डी. कृष्णस्वामी जी के घर में आयोजित करने के लिए उन्होंने निश्चय किया । इस सभा के अध्यक्ष के रूप में नारायण सुदर्शन पंडित को वे बुलाना चाहते थे । अबकी बार रूक्मिणी कल्याण से संबंधित एक सौ श्लोकों को आशुकविता में कहने के लिए वे गणपति मुनिवर से आग्रह करना चाहते थे । योजना के अनुसार मुनिवर के सामने यह प्रश्न रखा गया । श्लोकों को लिख लेने के लिए लेखक भी तैयार थे । सब के देखते देखते मुनिवर जी के मुँह से एक सौ श्लोक उमड़ने वाली गंगा प्रवाह के समान बहने लग गये थे ।

जिस वेग से वे श्लोकों को कहते जा रहे थे उसी वेग से बल्कि उस से भी अधिक वेग से लेखक लिखते जा रहे थे । मुनिवर जी को संदेह हुआ । वे जानना चाहते थे कि वे उन के श्लोकों को उतने ही वेग से लिपि बदद कर रहे हैं या नहीं । इसलिए उन्होंने लिखे गये श्लोकों को पढ़ने के लिए कहा । लेखक का भांडा फूट गया । वास्तव में उसके पास सौ श्लोक पहले से ही लिखे हुए थे । वह वहाँ बैठ कर मात्र लिखने का अभिनय कर रहा था । सभा में उपस्थित सज्जनों को लेखक की यह धूर्तता अच्छी नहीं लगी । उस के प्रति उनके मन में जुगुप्सा जागृत हुई । इस भाग को अध्यक्ष जी ने वहीं रोक दिया । अध्यक्ष सुदर्शन जी अब स्वयं गणपति मुनिवर जी की परीक्षा लेने लग गये । जब मुनिवर जी अष्टावधान कार्य में पूर्ण रूप से मग्न थे तब एक कागज की डुकड़ी पर अलग अलग विषयों से संबंधित नामों को लिखकर मुनिवर जी के पास भेजने लगे ।

अलग अलग विषयों को एक क्रम में रखते हुए उन से संबंधित पद्यों की रचना अवधानी को करना पड़ता है । इस क्रिया को व्यस्ताक्षरी कहते हैं । इस व्यस्ताक्षरी को बहुत खूबी के साथ पूरा कर गणपति मुनिवर जी सब की प्रशंसा के पात्र हुए । अष्टावधान के अंत में किसी भी प्रसिद्ध काव्य से एक श्लोक को पढ़ कर सुनाया जाता है । सुनने के बाद उस की संदर्भ सहित व्याख्या अवधानी को करना पड़ता है । इस के द्वारा अवधान क्रिया में अगर कोई अहित कर प्रसंग को किसी ने छेड़ा हो तो उस को भुलाने के लिए भी प्रयत्न किया जाता है । अध्यक्ष सुदर्शन जी ने अवधानी गणपति मुनिवर को आदेश दिया कि आप व्यस्ताक्षरी के द्वारा ही टीका टिप्पणि कर सकते हैं । इस श्लोक के जो दोष हैं उनकी गणना करते हुए सदस्यों का मनोरंजन मुनिवरजी ने किया । अध्यक्ष सुदर्शन जी को अपनी गलती का अनुभव हुआ । उन्होंने सोचा कि इस प्रकार मुझे मुनिवर जी की परीक्षा नहीं लेना चाहिए था । उन्होंने क्षमा भी मांगी । उदार हृदयवाले और क्षमा गुण संपन्न गणपति मुनिवर जी ने सुदर्शन जी को क्षमा किया । इतना ही नहीं वे उसके मित्र भी बन गये । गणपति मुनिवर जी की प्रशंसा ऐसे चुने हुए शब्दों में लोग करने लगे कि मुनिवर से वे प्रशंसा की बातें सही नहीं गयीं ।

XII अपनी मातृ भूमि के लिए व्याकुलता :

गणपति मुनिवर की विद्वत्ता एवं प्रतिभा की ओर मद्रास के शिक्षित लोग, मुख्य रूप से विद्यार्थी आकर्षित हुए । भारतीय धर्म एवं संस्कृति की महानता पर जोर देते हुए उन के पुनरुत्थान के लिए काम करने का उपदेश गणपति मुनिवर जी दिया करते थे । वे चाहते थे कि वेदों में वर्णित आदर्श समाज की स्थापना के लिए हम सब प्रयत्न करें । यही उनके उपदेशों का सार हुआ करता था । ऋग्वेद का गणपति मुनिवर ने गहराई के साथ अध्ययन किया था । इसलिए वे जानते थे कि हमारा गत वैभव कितना

उन्नत था । वे हमारे अवनतियों से भी खूब परिचित थे । हमारे ऋषि-मुनि लोग सांसारिक भोग और अध्यात्मिक ज्ञान दोनों को मिला कर जीना जानते थे । उन दोनों को वेदकालीन ऋषियों ने एक दूसरे से खूब मिलाया भी था । गणपति मुनिवर जी का विचार था कि हम प्राचीन ऋषि-मुनियों की वाणी भूल गये हैं । हम अपने जीवन में सांसारिक सुख-भोग के लिए अधिक ऊँचा स्थान दे रहे हैं । अध्यात्मिक क्षेत्र को भुला देने के कारण ही हमारी अवनति शुरू हो गयी है । वेदों के अंतर्गत् को हम समझ नहीं पा रहे हैं । मात्र मंत्रोच्चारण और नियमों के पालन से तृप्ति को पा रहे हैं । आज हम जीवनोत्साह, धैर्य, गांभीर्य, आत्मविश्वास जैसे महान गुणों के बदले दुर्बलता और आलस्य जैसे गुणों को अपना रहे हैं । गणपति मुनिवरजी के इस संदेश से विद्यार्थियों को अधिक स्फूर्ति मिली । वे देश के लिए और प्राचीन संस्कृति के पुनरुत्थान के लिए हर प्रकार के त्याग को करने के लिए तैयार हो गये ।

मद्रास क्रिश्चियन कालेज के तेलुगु आचार्य रंगय्य नाइडु गणपति मुनिवर जी के अच्छे मित्र थे । हमारे देश के इतिहास से संबंधित बातों का जो विवरण गणपति मुनिवर जी दिया करते थे उन का रंगय्य नाइडु भारी समर्थक थे । गणपति मुनिवर जी अकसर कहा करते थे कि प्राचीन अस्त्रों या आभरणों के आधार पर उनकी सभ्यता का अंदाजा लगाना बुरी बात है । वेदकालीन सभ्यता को हमारे इतिहासज्ञ ठीक तरह समझ नहीं पाये हैं । वेद काल के लोग प्रकृति के पुजारी जरूर थे । पर वे चिंतनशील व्यक्ति भी थे । वे इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं थे कि हमारा वेद धर्म दोषयुक्त था और बौद्ध, जैन और इसलाम के संपर्क में आने के कारण ही उस में सुधार आ गया है । वे जानते थे कि वेद एक आदर्श धर्म का ही उपदेश देते हैं । दूसरे धर्मों के कारण वेद धर्म में किसी प्रकार का सुधार या परिवर्तन

नहीं आया है । हमेशा अपने देश, धर्म और संस्कृति के बारे में सोचने वाले गणपति मुनिवरजी से एक बार आचार्य नाइडु ने पूछा आप क्यों इन सब के बारे में इतने चिंतित होते हैं । जवाब में गणपति मुनिवर ने कहा : दासम् देशस्वइतम् प्रतिपदम् अयाम् ध्यायति जनः । अर्थात् मैं देश की परिस्थितियों के बारे में सोचता रहता हूँ । गणपति मुनिवर जी की व्याकुलता को विद्यार्थी लोग समझ पाये थे । वे जानते थे कि गणपति मुनिवर की तपस्या देश की उन्नति के लिए ही है । उन्होंने यह भी निर्णय कर लिया कि गणपति मुनिवर जी के बताये मार्ग पर चलना ही उनका एकमात्र कर्तव्य है । विद्यार्थियों के इस निर्णय से गणपति मुनिवर जी बहुत खुश हुए । आनंद के साथ अपने अध्यापन कार्य को फिर से शुरू करने के लिए वे तिरुवण्णामलै पहुँचे ।

XIII अप्पु का आगमन :

वेल्लूर (Vellore) का वूरहीस (Vureese) कालेज काफी पुराना कालेज है । तमिल भाषा के साथ साथ तेलुगु पढ़ने की सुविधा भी इस कालेज में थी । एक बार कालेज में तेलुगु प्राध्यापक की आवश्यकता पड़ी । कालेज के प्रिन्सिपाल महोदय चेंबरलिन (Chemberlin) ने इस बारे में मद्रास क्रिश्चियन कालेज के तेलुगु आचार्य रंगय्य नाइडू से जिक्र किया । प्रो. नाइडू और रामस्वामी अय्यर दोनों मिलकर तिरुवण्णामलै आये । सीधा मुनिवर जी से प्रार्थना की कि आप अधिक वेतन वाले इस काम को स्वीकार कीजिए । गणपति मुनिवर को उन दोनों का प्रस्ताव अच्छा लगा । उन की बात मानते हुए सन् 1904 के जनवरी महीने में वे वेल्लूर वूरहीस कालेज के तेलुगु अध्यापक बने । गणपति मुनिवर जी का स्वागत करते हुए प्रिन्सिपाल महोदय जी ने कहा था : आप को देख कर लग रहा है मानों मैं ईसा मसीह के शिष्य डेविड को देख रहा हूँ । और एक महाशय श्री थामस हारिस

(Thomas Harris) ने कहा आप में मैं भारतीयता को देख रहा हूँ । इस भारतीयता को मेरा नमस्कार । अध्यापकगण और विद्यार्थी वर्ग दोनों ने अनुभव किया कि गणपति मुनिवर जी के आगमन से कालेज के इतिहास में एक नूतन अध्याय शुरू हो रहा है ।

एक दिन गणपति मुनिवर यफ.ए. [(Fellow of Arts) बाद में इस कोर्स को इंटरमीडियट कहने लगे थे] क्लास ले रहे थे । पाठ प्रारंभ करने के पहले हाजिरी लेनी थी । एक एक करके सब विद्यार्थियों के नाम पढ़ते गये । थोड़े नामों के बाद के. जी. सुब्रह्मण्यम् नामक एक विद्यार्थी का नाम आया । नाम लेकर गणपति जी ने पुकारा । थोड़ी देर के बाद उस विद्यार्थी से मुनिवर ने पूछा : क्या आप को घर में अप्पू के नाम से पुकारा जाता है । विद्यार्थी ने कहा : हाँ जी । तुरंत मुनिवरजी ने कहा : पिछले कर्ज को चुकाने का बल तुम्हें भगवान दे । (तेलुगु में 'अप्पु का अर्थ कर्ज या उधार या ऋण है । इसी बात को लेकर मुनिवर ने कर्ज शब्द का उपयोग अपने आशीर्वाद में किया है) यह विद्यार्थी अप्पु वास्तव में मद्रास के शिष्य रामस्वामी अय्यर का एक दूर का नातेदार था । इतना ही नहीं यह रामस्वामी अय्यर के परदादा उपनिषद ब्रह्मजी का वंशस्थ भी था । छुटपन में ही माँ-बाप के स्वर्गवास हो जाने के कारण अप्पू, उस का भाई कल्याण रामन और बहिन कावेरी एक दम अनाथ बन गये थे । गणपति मुनिवर ने इस शिष्य अप्पू को प्यार से अपनाया । उसे गुरु का वात्सल्य दिया । उसे मंत्र दीक्षा बद्ध भी उन्होंने किया । अध्यात्म मार्ग में जिस मार्ग दर्शन की आवश्यकता होती है उसे भी मुनिवरजी ने अप्पू को प्रदान किया । एक बार अप्पू ने अपने पूर्वज ब्रह्मजी को देखा । उनको लगा मानो उपनिषद ब्रह्मजी गणपति मुनिवर जी के दिखाये मार्ग पर चलकर अपने जन्म जन्मांतर के कर्मों को दूर कर लेने के लिए कह रहे हैं । विशालाक्षी जी माँ बनकर अप्पू को उसके छोटे भाई और छोटी

बहन के साथ अपने घर में रख लिया । ये तीन वास्तव में गणपति जी और विशालाक्षी जी के संतान बन गये थे । आगे चलकर अप्पू ने मुनिवर जी के गोत्र को स्वीकार कर उन के परिवार का एक सदस्य बन गया ।

उन दिनों में उत्तर भारत का वातावरण अशांतिपूर्ण था । पंजाब और बंगाल में अतिवादियों (Ultras) का दल काफी सक्रिय था । देश को स्वतंत्रता दिलाने के लिए कुछ क्रांतिकारी युवक अपने अपने गुप्त गुट बनाकर देश में खलबली मचा रहा थे । क्रांति की हवा मद्रास और वेल्लूर के विद्यार्थियों को छूने लगी थी । वेल्लूर के अनेक विद्यार्थी गणपति मुनिवर जी के शिष्य बन गये थे । गणपति मुनिवर जी अपने शिष्यों की आतुरता, उत्साह और देश प्रेम को जानते थे । स्वतंत्रता के लिए तडपने वाले विद्यार्थियों से उन की सहानुभूति भी थी । पर वे हिंसा मार्ग को अपनाने के पक्ष में नहीं थे । नारे बाजी से और हिंसा के मार्ग को अपनाकर, उन का विचार था हम स्वतंत्रता को पा नहीं सकते । वे इसे असंभव कार्य भी मानते थे । उन का मत था कि विद्यार्थी का काम विद्या का आर्जन करना मात्र है । अपने इसी विचार को विद्यार्थियों के सामने भी वे प्रकट किया करते थे ।

सन् 1906 में गणपति मुनिवर की अध्यक्षता में एक संघ की स्थापना हुई । उस का नाम 'उमाम् वन्दे मातरम्' । क्योंकि विद्यार्थियों में देश को स्वतंत्र बनाने की इच्छा बहुत बलवती थी । इसलिए गणपति मुनिवर जी उनको मंत्र दीक्षा देकर एक सन्मार्ग पर ले जाना चाहते थे । स्वतंत्रता संग्राम के लिए मुनिवर जी ने एक योजना को भी तैयार किया । पर अन्य विद्यार्थियों को गणपति मुनिवर का सहनशीलता मार्ग अच्छा नहीं लगा । क्रांति लाने की जिद उन की थी । अनेक लोगों को विद्यार्थियों की यह जिद अच्छी नहीं लगी । सुन्दर पांड्यन के दो पुत्र-श्रीनिवास

और वेंकट रामन पढाई को छोड़कर अतिवादियों के दल में भरती होना चाहते थे । सुन्दर पांड्यन ने सोचा कि अगर मेरे दोनों बेटे गुमराह हुए हैं तो इसका प्रधान कारण गणपति मुनिवर जी है । इसलिए कालेज कमिटी के पास गणपति मुनिवरजी के विरुद्ध कुछ शिकायतें ले गये । पर वूरहीस कालेज के कमेटी के लोगों का विश्वास था कि मुनिवर जी अपने विद्यार्थियों को कभी कुमार्ग पर नहीं ले जा सकते हैं । इसलिए सुन्दर पांड्यन के आरोपों पर कोई विशेष ध्यान न देकर उन आरोपों को ठुकराया । पर सुन्दर पांड्यन की पहुँच बहुत दूर तक थी । वे सीधे मद्रास के गवरनरजी से मिले । उन से सुन्दर पांड्यन ने बिनती की कि गणपति मुनिवरजी वूरहीस कालेज के विद्यार्थियों को बुरे मार्ग पर ले जा रहे हैं । गवरनर ने सुन्दर पांड्यन की बातें ध्यान से सुनी । सुनकर हंसते हुए उन्होंने कहा - इन कलम के सिपाहियों को आगे बढ़कर मेरे इस स्थान पर कब्जा कर लेने दीजिए ।

XIV विद्यार्थियों के साथ :

अध्यापकन के साथ साथ गणपति मुनिवर जी वेल्लूर के अनेक साधकों को अध्यात्मिक क्षेत्र में मार्ग दर्शन भी किया करते थे । उन से मंत्रदीक्षा लेनेवालों में सर्वश्री सर्वपल्लि नरसिंहय्या आचार्य शिव सुब्रह्मण्यम, उमामहेश्वरन जैसे बड़े लोग और विद्यार्थी भी थे । दैहिक कामनाओं को कम कर सहनशीलता, त्याग, अनुकंपा उदारता आदि आदि गुणों को अधिक करने के लिए वे अपने शिष्यों से कहा करते थे । उन के उपदेशों का सार यही हुआ करता था । उनका कहना था कि किसी एक धर्म की श्रेष्ठता उस धर्म के आचरण में ही है । एक व्यक्ति के अनुभव पर आधारित धर्म संसार के सब लोगों का मार्ग दर्शन नहीं कर सकता । यह बात हमें इतिहास के अध्ययन से मालूम होती है । वैदिक धर्म का आधार अनेक ऋषि मुनियों का अनुभव और साधना है ।

अगर वैदिक धर्म विश्व व्यापी है तो इसका कारण यही है । हम इस एक अमोघ धर्म के भागीदार हैं । इस बात पर हमें गर्व का अनुभव करना चाहिए कि विरासत में हमने इस धर्म को पाया है । गणपति मुनिवर जी के धर्म संबंधी भाषणों को सुनकर प्रभावित होने वालों में पाल आदिशेषय्या नामक एक ईसाई भी थे । यह सोचते हुए कि गणपति मुनिवरजी को हिन्दू धर्म को छोड़कर बाकी धर्मों का कोई परिचय नहीं होगा, पाल आदिशेषय्या ने बाइबल को उनके सामने पड़ा । कुछ दिनों के बाद मुनिवर जी बाइबल के अनेक वाक्यों का उल्लेख करते हुए पाल आदिशेषय्या को समझाया । उन्होंने पाल आदिशेषय्या से यह भी कहा ईसाई धर्म के पालन का अर्थ यह नहीं कि दूसरे धर्मों की निंदा करो । सब धर्मों में स्थित अच्छाइयों को ग्रहण करने की उदारता सब में होनी चाहिए । हिन्दू लोग जब तक अपनी स्वतंत्र प्रवृत्ति चिंतन शीलता को अधिक नहीं कर लेते और जब तक हिन्दू धर्म के मूल तत्वों को समझ नहीं लेते तब तक दूसरे धर्मावलंबियों के गौरव के पात्र नहीं बन सकते ।

इस बीच जो अपने आप को मुनिवर जी का मित्र कहा करते थे, वे भी उनके विरुद्ध प्रचार करने लगे । उन पर आरोप लगाया गया कि वे विद्यार्थियों को भड़का रहे हैं और गुमराह कर रहे हैं । इन सब को सुनकर गणपति मुनिवर जी के शिष्य अप्पू ने कहा था : ईसा ने अज्ञान धीवरों को संत बनाया था । ठीक इसी प्रकार विद्यार्थियों को राष्ट्र वीरों के रूप में बदलने का कार्य मुनिवर जी कर रहे हैं ।

XV तपस्या के लिए बुलावा :

वेल्लूर आये सिर्फ तीन वर्ष हुए थे । इस कम समय में ही उस जीवन से मुनिवर का जी ऊब गया । अध्यापक के रूप में जो वेतन उनको मिलता था वह उनके लिए पर्याप्त नहीं था ।

जब वे अपने आदर्शों का पालन करना चाहते थे तब उनके विरोधी शक्तियाँ अपना सर उठाने लग गयी थी । तिस पर पत्नि विशालाक्षी जी का स्वास्थ्य भी इतना अच्छा नहीं था । इसलिए वेल्लूर को छोड़ कर अध्यात्मिक साधना के लिए उपयुक्त और एक प्रांत को वे ढूँढ लेने की चाह दोनों की थी । पर एक न एक अड़चन के कारण वे वेल्लूर को छोड़ कर जा भी नहीं सके । सन् 1907 फरवरी 17 तारीख को मुनिवर जी ने एक सपना देखा । उनको लगा उनका चिर साथी भद्रक जिस के बारे में काशी के दुर्गा मंदिर वाले योगी ने कहा था, उन से कुछ कह रहा है । उन्होंने स्वप्न में अनुभव किया कि वह भद्रक मरने वाला है । मरने के पहले मानों वह उस से कुछ कह रहा था । अब मैं जा रहा हूँ तुम जागरूक रह कर अपनी तपस्या को निरबाध गति से निभावो ।

दूसरे दिन सुबह अखबारों में मुनिवर जी ने मद्रास अडयार (Adyar) थियोसाफिकल (Theosophical) सोसइटी (Society) के अध्यक्ष (Colonel Olcott) कर्नल ओलकाट के निधन समाचार को छपा देखा । इस समाचार के साथ साथ उन का एक फोटो (Photo) भी छपाया । फोटो को देखते ही मालूम हो गया कि यह कर्नल ओलकाट ही उन का चिर साथी भद्रक है । मुनिवर ने सोचा कि अगर यह चित्र जब मैं मद्रास में था तब मुझे मिलता तो कितना अच्छा होता । मैं, कम से कम उन से मिलता, अपने पूर्व परिचय, जन्मजन्मांतरो के परिचय के बारे में उनको बताता और साधना के क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए एक और अवकाश मिलता । जिस अवकाश से वे हाथ धो बैठे तो उस पर उनको अपार दुख हुआ । इस पर वे बहुत चिंतित भी हुए । स्वामी विवेकानंद जी का जीवन जिस महान उद्देश्य के लिए हुआ था कुछ ऐसे ही आदर्शों के पालन के लिए कर्नल ओलकाट का जीवन भी हुआ था । भारतीयों को जगा कर उनके अध्यात्मिक ज्ञान को

उद्दीप्त करना उन का उद्देश्य था । इस उद्देश्य के लिए उन्होंने अथक परिश्रम भी किया था ।

इस बीच पिता श्री नरसिंह शास्त्री ने कलुवराई आने के लिए कहला भेजा । उनके आदेशानुसार वे वहाँ पहुँचे । कुछ दिनों के लिए मुनिवर जी उनके साथ रहे । उसके बाद पिता जी से तीर्थ यात्रा पर निकलने के लिए आग्रह किया । पिता को लेकर वे त्रिवेणी संगम पहुँचे । संगम पर पिताजी को मुनिवर ने स्नान करवाया । पिताजी जिस नेत्र रोग से पीड़ित थे उस से उनको कुछ छुटकारा मिला । पीड़ा कुछ कम हुई थी । उनको कलुवराई में छोड़ कर मुनिवर जी वेल्लूर वापस आ गये । उस समय उन के लड़के महदेव को चेचक हो गया था । माँ सीतला देवी (चेचक की देवी) से अपने लड़के को शीघ्र चंगा करने के लिए मुनिवर जी ने प्रार्थना की । प्रार्थना की अच्छी सुनवायी हुई । उसके बाद पास वाले रेणुका देवी क्षेत्र पडैवीडु (Padaiveedu) हो आये । इस यात्रा के बाद मुनिवर जी के जीवन में एक नया अध्याय आरंभ हुआ । तपस्या के फल निकलने के दिन समीप पड़ गये थे ।

थामस हारिस (Thomas Harris) मुनिवर जी का सहयोगी था । मुनिवर की तपस्या के बारे में कुछ घटिया प्रचार करने लग गया था । वह कहा करता था कि मुनिवर तपस्या के लिए जो मार्ग चुन चुके हैं वह काफी पुराना मार्ग है । आजकल के जमाने के लिए यह एकदम लायक नहीं है । पर मुनिवर जी सबको समझाते थे कि तपस्या एक कालातीत मार्ग है जो सब कालों के लिए एक दम उपयुक्त है । वे यह भी जानते थे कि यही एक ऐसा मार्ग है जो फल को अवश्य पायेगा । वे चाहते थे कि उनकी तपस्या के मार्ग में किसी प्रकार का अवरोध न हो । इस लिए अपने प्राध्यापक पद को उसने इस्तीफा दे दिया । मित्रों ने उन्हें बहुत समझाया । इस्तीफा वापस लेने के लिए दबाव भी डाला । पर मुनिवर ने अपने इस्तीफे को वापस नहीं लिया । सन् 1907 के नवंबर तीन तारीख को वेल्लूर छोड़कर वे तिरूवण्णामलै के लिए रवाना हुए ।

XVI दीक्षा :

तिरूवण्णामलै की याद आते ही अपने शिष्य वासुदेव शास्त्री के यहाँ गये । अपनी नौकरी को छोड़कर आये हुए मुनिवर जी को देखकर शिष्य वासुदेव शास्त्री को बहुत आश्चर्य हुआ । पर वे इसलिए खुश थे कि उनके गुरु गणपति मुनिवर दीवाली के दिन उनके यहाँ है । पर दीवाली की खुशियों में मुनिवर जी ने भाग नहीं लिया । उन्होंने वासुदेव शास्त्री से तपस्या के लिए एक उचित स्थान ढूँढने के लिए कहा । गांव से दूर स्थित पच्चेयम्मा मरगत श्यामलांबा मंदिर (Pachaiyamma Margata Shyamalamba Mandir) को हर दृष्टि से उचित मान कर उसी की सूचना दे शिष्य गुरु को वहाँ ले गया । वहाँ गुरुजी की साधना के लिए जिन जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती है उन सब का आयोजन शिष्य वासुदेव शास्त्री ने किया । श्यामलांबा और कोई नहीं है । इनका जिक्र ललिता सहस्र नामावली में मंत्रिण्यांबा (MantriNyamba) अर्थात् जगन्माता त्रिपुर सुन्दरी जी के मुख्य मंत्री (Chief Minister) के रूप में किया गया है । उस दिन रात को मंदिर में बैठकर ध्यान करने लग गये थे । तब गर्भ गृह से पहले मुनिवर जी ने श्राव्य संगीत को सुना । संगीत के साथ साथ नृत्य का भी प्रदर्शन हो रहा था । धीरे धीरे मधुर संगीत लुप्त हो गया और उस के स्थान पर कर्कश ध्वनियाँ सुनाई देने लग गयी थी । गणपति मुनिवर ने देखा मानों कुछ भयंकर पैशाचिक आकृतियाँ विकार नृत्य को करते हुए उन की तरफ आ रही हैं । भयभीत मुनिवर जी देवी की स्तुति करने लगे और इन दृष्ट शक्तियों से अपने आप के बचाने के लिए भी प्रार्थना की । तुरंत शोर जो हो रहा था वह कम हो गया । इतना ही नहीं वे आकृतियाँ भी ओझल हो गयी । मुनिवर ने सोचा मैं जिन पिशाचों को देख चुका हूँ वे वास्तव में समाज में फैली अशांति और हिंसाओं के संकेत हैं । अपनी तपःशक्ति से इन से टक्कर लेने के लिए

मुनिवर जी ने एक निर्णय ले लिया । संसार में दैव शक्तियों के प्रकट होने के पहले तपस्वी लोग अपनी तपस्या के बल पर उन शक्तियों के आगमन के लिए अनुकूल वातावरण की सृष्टि करते हैं । वसिष्ठ महाऋषि ने अपने तप के बल पर रामावतार के लिए मार्ग को सुगम बनाने का शपथ लिया था । कुमारस्वामी जी का दिग्विजय अगर संपन्न हुआ तो उस के पीछे बृहस्पति की प्रशंसनीय तैयारियाँ ही हैं । तप के द्वारा तत्कालीन कलुषित वातावरण की शुद्धि करने और चारों ओर दैवशक्ति जगाने के प्रयत्न में अपने आप को लगाने के लिए मुनिवर जी ने निर्णय ले लिया ।

कल रात वाली घटना को भूलने के लिए दूसरे दिन से प्रणवमंत्र का जप करने का निर्णय लिया । पर उन्होंने सोचा कि जप के लिए श्यामलांबा का मन्दिर उतना उपयुक्त नहीं है । इस लिए पास वाले नैरुत्य लिंग के पास ध्यान करने बैठे । वह स्थान एक निर्जन स्थान था । हर कहीं सन्नाटा ही सन्नाटा छाया हुई थी । यह स्थान मुनिवर ने सोचा ध्यान के लिए अत्युत्तम स्थान है ।

उन्हीं दिनों तिरूवण्णामलै में दीपोत्सव को मनाया जा रहा था । (दीपोत्सव तिरूवण्णामलै का एक जबरदस्त उत्सव है । पासवाले पहाड़ पर एक लकड़ियों का मंच तैयार किया जाता है । अमुक समय पर आग लगायी जाती है । अग्नि की कांति को आज भी दूर दूर के लोग देख सकते हैं) उस समय पर चलने वाले देवी देवताओं के - अरूणाचलेश्वर और अपीत कुचाम्बा - उत्सव को देखने के लिए लाखों की तदाद में लोग आते हैं । सातवे दिन रथोत्सव मनाया जाता है । अब की बार अरूणाचलेश्वर का रथ निकला तो था । पर थोड़ी दूर जाकर रूक गया था । वह ठस से मस नहीं हो रहा था । गांव के वायव्य कोने में रथ जाकर रूक गया था । ऐसे तो वहाँ कोई अडचन नहीं

था । फिर भी रथ नहीं हिल रहा था । हजारों की तदाद में आये हुए भक्त लोगों ने अपने अपने हाथों को लगाया । पर रथ नहीं हिल रहा था । उस दिन रात को जब नैरूत्य मंदिर में मुनिवर सोये हुए थे तब उन्होंने एक स्वप्न को देखा । उनको लगा मानो उनका शिष्य रामलिंग गुरुक्कल जो उस मंदिर के पूजारी भी थे, उन से रथ चलाने की सहायता मांग रहे हैं । दुसरे दिन सुबह मुनिवर जी आकर रथ के पास खड़े हो गये । वे अरूणाचलेश्वर और अपीत कुचांबा से स्तुति द्वारा प्रार्थना की, रथ को चलाने के लिए । तुरंत वहाँ एक अद्भुत घटना घटी । जब लोगों ने रथ की रस्सी खींची तो रथ चलने लगा या दैव शक्ति उन के हाथों द्वारा मानो प्रकृत हुई हो ऐसा गणपति मुनिवर जी ने सोचा । मुनिवर चलने वाले रथ के रूक जाने के कारणों के बारे में सोचने लग गये थे । उन के अनुसार यह जगत अर्थात् यह संसार खुद एक बड़े रथ का संकेत है । चलना इस जग के प्रगति का निशान है । जब चलन रूक जाता है तब हमारी शक्ति भी रूक जाती है । मुनिवर जी ने सोचा कि तपस्या के मार्ग के सब अडचनों को दूर कर अध्यात्मिक शक्ति को बढ़ाना ही उन की अपनी तपस्या का उद्देश्य होना चाहिए । उस दिन दुपहर के समय मुनिवर जी के मन में, ऊपर विरूपाक्ष की गुफा में रहनेवाले श्री ब्राह्मण स्वामी से भेंट कर आने की इच्छा जागृत हुई । सीधा वे विरूपाक्ष गुफा पहुँचे । गुफा में सिर्फ ब्राह्मण स्वामी थे । उनका सहायक पलनि स्वामी तब वहाँ नहीं था । स्वामी जी के पैरों पर पडकर मुनिवर जी ने अपने हृदय की वाधा को व्यक्त किया : स्वामी जी मैं सभी धार्मिक ग्रंथ पढ़ चुका हूँ । इतने जप और ध्यान कर चुका हूँ कि मन आज तृप्त है । पर मन को शांति नहीं मिल रही है । तपस्या के सही अर्थ को भी मैं जान नहीं पा रहा हूँ । ” मुनिवर जी की बातों को सुनकर ब्राह्मण स्वामीजी थोड़ी देर के लिए चुप रहे । बाद में गणपति मुनिवर को बुलाकर उनको आशीर्वाद दिया और कहा 'मैं' शब्द जहाँ से निकलता है उस स्थान में मन को लगाना ही तपस्या है । मंत्र और जप करते समय ध्वनि जहाँ से निकलती है वहाँ मन को बांध रखना ही तपस्या है ।

XVII गुरुजी के चरणों के पास :

सन् 1907 के नवंबर महीने का अठारहवां तारीख मुनिवर जी के जीवन एक मुख्य तारीख है । ब्राह्मण स्वामी जी ने उस दिन मुनिवर जी को तपस्या के अंतरार्थ को समझाया था । स्वामीजी के वचनों से मुनिवर को नया प्रकाश मिला । स्वामी जी का उपदेश स्वष्ट और संक्षिप्त था । इस उपदेश से तपस्या के वास्तविक अर्थ को मुनिवर जी जान गये थे । गणपति मुनिवर ने श्री ब्राह्मण स्वामी में अपने गुरु को देखा, जाना और पहचाना । ब्राह्मण स्वामी जी वेद ऋषि सम थे । आत्म साक्षात्कार को वे पा ही चुके थे । इतना ही नहीं दूसरो को भी आत्म दर्शन करवानेवाले महापुरुष थे ये ब्राह्मण स्वामी ।” मन और प्राणों का उनके द्वारा आत्मा में बसाना ही तपस्या है ” - इस रहस्य को मुनिवर जी अब ताड गये थे । इस लिए गणपति मुनिवर जी ने श्री ब्राह्मण स्वामी जी के सान्निध्य में ही अपनी साधना को आगे बढ़ाना चाहा । अपने मन की इस आशा को मुनिवर ने ब्राह्मण स्वामी जी के सामने रखा । ब्राह्मण स्वामी मान गये ।

‘मैं’ शब्द के मूल को ढूँढकर मन को उस में रमाने को ही आत्म चिंतन अथवा विचार मार्ग कहते हैं । पर यह मार्ग ऐसा कोई सुलभ साध्य मार्ग नहीं है । मन बहिर्मुखी होता है । इसे नियंत्रित कर आत्म की ओर झुकाना एक कठिन साधना है । मार्ग कठिन अवश्य है पर इस के फल बहुत ही मीठे और महत्तर होते हैं । यही कारण है कि गणपति मुनिवर जी आत्म चिंतन कार्य में लग गये ।

कुछ दिनों के बाद ब्राह्मण स्वामी जी के सहायक पलनिस्वामी गुफा लौट आये । मुनिवर जी ने ब्राह्मण स्वामी के निज नाम को जानना चाहा । उत्सुकता के कारण मुनिवर जी ने पलनिस्वामी से इस के बारे में पूछा । पलनिस्वामी ने जवाब दिया कि वेकट

रामन । वैकट रामन को रमण में मुनिवर जी ने बदला । फिर पहले शब्द वेन्कट को निकाल कर रमण मात्र को लिया । क्योंकि ब्राह्मण स्वामी ऋषि सम हैं इस लिए मुनिवर जी इस दिन से ब्राह्मण स्वामी को रमणमहर्षि के नाम से बुलाने लग गये । इस संदर्भ में पांच श्लोकों की रचना कर मुनिवर ने रमण महर्षि के सामने रखा । रमण महर्षिजी उन श्लोकों को पढ़कर मन ही मन मुस्कुराने लगे । अपने पिता और पत्नि को मुनिवर ने अवगत कराया कि उन को गुरु का अनुग्रह प्राप्त हो गया है । कार्तिक दीपोत्सव के दिन विशालाक्षी जी वेल्लूर से आयी । उन्होंने भी रमणमहर्षि का दर्शन किया । उसी दिन श्याम को अरूणाचल पहाड़ पर ज्योति को जलाया गया । उस समय रमण महर्षि के साथ मुनिवरजी, उनकी पत्नि विशालाक्षी और उनके कई शिष्य थे । सब एक अवर्णनीय आनंद का अनुभव करने लगे थे । उनको एक साथ रमण दर्शन और ज्योति दर्शन प्राप्त हुआ था ।

XVIII उमा सहस्रम् :

दीपोत्सव के दूसरे दिन ही विशालाक्षी जी वेल्लूर वापस आ गयी । विरूपाक्ष गुफा के एक दम पास अपनी तपस्या के लिए एक उचित स्थान को दिखाने के लिए श्री ब्राह्मण स्वामी अर्थात् रमण महर्षि से मुनिवर ने प्रार्थना की । प्रार्थना को सुनकर भगवान रमण ने मुनिवर जी को पास वाले आम्र गुफा (आम के वृक्ष की गुफा) को दिखाया । दिखा कर हाथ पकड़ कर मुनिवर जी को खुद उस गुफा के पास ले गये । यज्ञमाल नामक एक भक्तिन रमण महर्षि के लिए भोजन बनाकर रोज दुपहर को लाया करती थी । उस दिन से मुनिवर जी के लिए भी वही भोजन की व्यवस्था की गयी । मुनिवर जी की सेवा करने का भाग्य जो यज्ञमाल को मिला था उस के लिए उन्हें बहुत खुशी मिली थी ।

यह तो हम जानते हैं कि मुनिवर जी ने अरूणाचलेश्वर की स्तुति में एक हजार श्लोकों की रचना की थी । अब गुरु तक पहुँचाने वाली जगन्माता की स्तुति करते हुए आभार प्रदर्शन हेतु एक हजार श्लोकों वाले एक काव्य की रचना बीस दिनों में करने के लिए कटिबद्ध हो गये । उन की तपस्या के लिए सही मार्ग दिखाने वाले भगवान् रमण महर्षि ही थे । इस लिए मुनिवर ने सबसे पहले गुरु की अनुमति ली । गुरु ने शिष्य को अनुमति दे दी !

सन् 1907 के नवंबर उनतीस तारीख को मुनिवर जी उमासहस्रम काव्य की रचना प्रारंभ की । कभी कभी आम्र गुफा में झाँककर भगवान् रमण महर्षि जी मुनिवर को प्रोत्साहन दिया करते थे । एक दिन की बात है । उमासहस्रम की रचना में मुनिवर तल्लीन हो गये थे । अचानक उन को भूख लगी । भूख का कारण उन्हें मालूम नहीं हुआ । लेखिनी को रखकर उमादेवी जी की प्रार्थना करने लगे । उस समय यज्ञमाल अपने घर में भोजन बना रही थी । किसी ने आकर उन से कहा - देखोजी पहाड़ पर के गुफावाले गणपति मुनिवर को जोरो की भूख लगी है । तुम फौरन वहाँ भोजन भेजो । यज्ञमाल ने शीघ्र ही एक बालक के द्वारा खाना भेजा । भोजन कर मुनिवर जी फिर से काव्य रचना में लग गये । लगातार दो सप्ताहों तक यह रचना कार्य चलता रहा । इस के बाद उन की दाहिनी उंगली पर गुलका (Whitlow) उठा । गुलके के असहनीय पीडा के कारण वे लिख नहीं पाये । लेखन कार्य रूकता गया । पहले तीन चार दिन पीडा के साथ ही लिखते रहे । इस तरह तीन चौथाई भाग को उन्होंने समाप्त किया था । बाकी एक दो दिन में काव्य को समाप्त करना था । निश्चित समय के अंदर अपने काव्य को समाप्त करने की आशा उनको नहीं थी । उसी दिन रात को मद्रास में एक अद्भुत घटना घटी । पुण्यकोटी नामक एक डाक्टर

मद्रास में रहते थे । जब वे सो रहे थे तब उनको लगा मानो कोई उस से इस प्रकार कह रहा है : तिरूवण्णामलै के पहाड पर तपस्या करने वाले एक तपस्वी की फौरन चिकित्सा होनी है । आप तुरंत जाकर उन की चिकित्सा कीजिए । दूसरे दिन सुबह डा. पुण्यकोटी जी तिरूवण्णामलै पहुँचे । पूछताछ करते हुए वे विरूपाक्ष गुफा के पास आये । वहाँ उन्होंने पूछा क्या यहाँ के किसी साधु को चिकित्सा की जरूरत है । वहाँ रहनेवाला एक व्यक्ति डा. साहब को गणपति मुनिवर जी के पास ले आया । उन की उंगली पर के गुलके को काट कर पट्टी बांध वे चले गये । उमा सहस्रम की रचना आरंभ कर अब उन्नीस दिन हो गये थे । आज बीसवाँ दिन था । रात पूरा बैठ कर उस काव्य को समय के अंदर समाप्त करने की आशा मुनिवरजी को थी । पांच शिष्य लेखन सामग्री के साथ आकर बैठ गये थे । भगवान रमणमहर्षि भी आ गये थे । उनके मुँह से निकले श्लोकों को वे पांच शिष्य एक साथ लिखे, इस उद्देश्य से वे श्लोकों को कहते जा रहे थे । आधी रात तक सौ श्लोकों की रचना पूरी हो गयी थी । रमण महर्षि जी आंखे मूंदकर बैठे थे । अचानक उन्होंने प्रश्न किया क्या मुनिवर जी के द्वारा कहे जानेवाले श्लोकों को वे लेखक लिख पायेगे । मुनिवर जी ने अनुभव किया कि रमण महर्षि की कृपा से उसकी इच्छा पूरी हो रही है । अपनी कृतज्ञता को मुनिवरजी ने इन शब्दों में प्रकट किया :

यदस्स महतः काले
पाकं यातोस्मि कर्मणः
अनुग्रशूयं आचार्य
रमणस्य महात्मनः

अर्थात् निश्चित समय के अंदर यह महा कार्य रमण महर्षि जी की कृपा से पूरा हुआ है ।

स्फूर्ति से भरे कवि हृदय से प्रस्फुटित दिव्य काव्य उमासहस्रम है । आध्यात्मिक ज्ञान के पिपासी जिन अडचनों का सामना करते हैं उन्हें दूर करने वाला काव्य उमासहस्रम है । हृदय में सोई हुई ज्ञान संपत्ति को जगाने की शक्ति इस काव्य में है । मनुष्य को आत्म विश्वास के मार्ग पर ले जाने वाला मार्ग दर्शक यह काव्य है । इस काव्य में विद्यार्थी देवी के विविध मुखों का सुन्दर वर्णन है । मनुष्य के सामान्य ज्ञान की सीमा पर मात्र न रुक कर मनुष्यों को अध्यात्म लोक तक ले जाना वाला काव्य यह उमा सहस्रम है । यह एक उत्तम काव्य है । इस काव्य के प्रत्येक श्लोक में मंत्रशक्ति छिपी हुई है । संपूर्ण काव्य भक्त जनो के पारायण योग्य है । अपनी तपस्या के एक अंग के समान गणपति मुनिवरजी ने इस काव्य की रचना की थी । इस काव्य को लिखकर मुनिवर जी ने सात बार इसे संशोधित किया । इस काव्य के अलंकार शब्द संपत्ति और छंद संस्कृत प्रेमियों के लिए रुचिकर लगेंगे । उमादेवी जी का जन्म, उनका बाल्य, विवाह, प्रेम आदि का वर्णन कलात्मक रूप में हुआ है । उमा देवी जी का मंदहास, कृपा दृष्टि और उमामहेश्वरों की प्रेमकेलि एक दम अनुपम है । इस काव्य का हर एक श्लोक अपने आप में सुन्दर है । जो हर एक श्लोक को पढ़कर मनन करता है वही इस काव्य का पूर्ण स्वाद ले सकता है । इन के प्रख्यात शिष्य कपालि शास्त्री जी ने इस काव्य पर 'प्रभा' नामक भाष्य लिखा है । अपने भाष्य में कपालि शास्त्री ने लिखा है कि इस काव्य की टीका लिखकर मैंने गंगा नमन के लिए गंगा का ही अर्घ्य देने या चढ़ाने का काम किया है ।

XIX साक्षात्कार :

उमासहस्रम काव्य की रचना को पूरा करने के बाद गणपति मुनिवर ने एकांत को चाहा । भगवान रमण महर्षि के कहे अनुसार

अरूणाचल के अंत में रहनेवाले सप्तजहरी (Saptajahari) स्थान पहुँचे । सात उत्सों (Fountain Head)वाला यह बहुत शीतल प्रदेश था । अरूणाचल के चप्पे चप्पे से रमणमहर्षि जी परिचित थे । अरूणाचल ही तो उनका निवास स्थान था । पर मौन ही उन का मौन अर्थात् व्रत था । उनका हृदय ही अरूणाचल था । अरूणाचल पर गणपति मुनिवर ने पांच प्रार्थना श्लोक लिखे हैं । प्रत्येक श्लोक के अंत में अरूणाचल रमण शब्द का उल्लेख उन्होंने किया है ।

गणपति मुनिवर जी के शिष्य ने उमा सहस्रम के पठन के एक कार्यक्रम की योजना पच्चयम्मा के मंदिर में की । रमण महर्षि के सम्मुख में आयोजित इस कार्यक्रम में भाग लेने और पठन को सुनने के लिए अनेक शिष्य तिरूवण्णामलै आये । अब तक मुनिवर भी अपने एकांत वास को समाप्त कर चके थे ।

जगन् माता के बारे में रचा गया महाकाव्य यह उमा सहस्रम है । रमण महर्षि की कृपा से यह काव्य संपन्न हुआ था । कवि श्रेष्ठ गणपति मुनिवर जी की रचनायें, अरूणाचल के पास वाले श्यामलाबा के मंदिर में उन का पठन ये सब संयोग की बाते हैं ।

गणपति मुनिवर जी के एक शिष्य थे नारायण घनपाठी जी । उनके स्वप्न में उमादेवी प्रकट हुई थी । उमा देवी जी ने नारायण घनपाठी से कहा: उमा सहस्रम में मेरे लिए अत्यंत प्रिय श्लोक है । उस श्लोक को तुम पढ़ो । घनपाठी जी स्वप्न में निम्न लिखित श्लोक को पढ़ा :

गणपतये स्तन घटियो :

पदकमले सप्त लोक भक्ति भ्यह :

अधर पुटि त्रिपुरजित्

दधासि पियूषम् अम्बा त्वम्

अर्थात् अम्मा तुम तीन स्थलों से अमृत दे रही हो । पुत्र गणपति को अपनी छाती से, सात लोकों के भक्तजनों को अपने पदकमलों से और त्रिपुर को जीतने वाले शिवजी को अपने अधरों से ।

दूसरे दिन उमा सहस्रम् का पठन प्रारंभ होनेवाला था । इसके पहले एक आगंतुक वहाँ आया । आकर वहाँ रमण महर्षि को देख नमस्कार कर वापस लौटने ही वाला था । वहाँ पास ही गणपति मुनिवर थे । उनको देखकर उसने कहा : अच्छा, आप यहाँ रहते हैं । सवाल करते हुए उस ने नमस्कार भी किया । वे थे चेरूपाकम् (Cherupakam) कोण्डय्या । श्री कोण्डय्या जी गणपति के उपासक थे । वे रोज गणपति होमम् किया करते थे । एक दिन होमाग्नि के मध्य में उन्होंने गणपति मुनिवर को देखा था । उस दिन से वे मुनिवर के शिष्य बन गये थे ।

जब उमा सहस्रम् का पठन हो रहा था तब अनेक आश्चर्यकर घटनाओं को घटते शिष्यों ने देखा । जहाँ रमण जी बैठे थे वहाँ से शांति आनंद के श्रोतों को बहते लोगों ने देखा । मुनिवर जी रमण महर्षि को भगवान् कार्तिकेय का अवतार समझते थे । वहाँ एक घटना घटी थी । उस का उल्लेख इस प्रकार हो सकता है । जब उमा सहस्रम् का पठन प्रारंभ होने ही वाला था तब एक प्रज्वलित नक्षत्र दिखाई दिया । वह सीधा रमणजी में जाकर उन के माथे को छूकर वापस चला गया । इसे सबने अनुभव किया । बैठे हुए लोगों ने आश्चर्य चकित होकर इस दृश्य को छः बार घटते हुए देखा । गणपति जी ने तो रमण महर्षि में भगवान् कार्तिकेय को ही देखा था । तुरंत उन के मुँह से रमण महर्षि की स्तुति में आठ श्लोक निकले । आज भी जब रमणालय में जो पूजा होती है तब इन श्लोकों का ही पठन होता है । पठन के बाद उमा सहस्रम् काव्य का अर्पण देवी के नाम पर हुआ ।

गणपति मुनिवर जी एक पवित्र स्थान पर जाकर अपनी तपस्या को आगे बढ़ाने के प्रयत्न में थे । रमण महर्षि से अब तक वे तपस्या के रहस्य के बारे में जान चुके थे । तपस्या के द्वारा मंत्र शक्तियों को पाकर देश का उद्धार करने की उन की इच्छा

थी । रमणजी से बताये गये आत्म चिंतन मार्ग के द्वारा लोगों को उद्धार करने की शक्ति क्या मिल सकती है ? इस प्रकार की प्रार्थना वे हमेशा रमण महर्षि से किया करते थे ।

“ सर्वशक्ति संपन्न भगवान पर विश्वास करो । आत्म चिंतन के मार्ग पर आगे बढ़ो । इस संसार की सृष्टि भगवान ने की है । उस सृष्टि की रक्षा करने की शक्ति उस में है । भूत भविष्य एवं वर्तमान में जो बातें हुई हैं, होनेवाली हैं, हो रही हैं इन सब का ज्ञान उन को है । वे सब उन्हीं के इच्छानुसार हो रहे हैं । अपना सबकुछ भगवान के लिए अर्पण करो और आत्म चिंतन में रत रहो । ” रमण महर्षि की इन बातों से मुनिवर को समाधान मिला । मद्रास शहर में रहने वाले अपने शिष्य वासुदेव शास्त्री से मिलने के लिए मद्रास की ओर मुनिवर जी बढे ।

XX कपालि शास्त्री जी :

वासुदेव शास्त्री जी का कहा मान कर गणपति मुनिवर जी तिरुवट्टियूर (Thiruvottiyur) आये । आदिपुर कहलाने वाले इस गांव की अधिदेवता त्रिपुर सुन्दर देवी हैं । गांव के दक्षिण भाग में एक जीर्ण मंदिर था । उसी में गणपति मुनिवर जी तपस्या करने के लिए तैयारियाँ करने लगे । तप को प्रारंभ करने के पहले माँ त्रिपुर सुन्दरी के दर्शन के लिए आये । देवी के सामने खडे होकर अपने श्राव्य कंठ से उमा सहस्रम् के एक श्लोक को पढने लगे । कंठ की गहराई और माधुर्य को सुनकर वहाँ उपस्थित एक विद्यार्थी गणपति मुनिवर की ओर आकृष्ट हुआ । यह जान कर कि श्लोक को पठन करनेवाले गणपति मुनिवर जी हैं उस विद्यार्थी ने उनसे प्रार्थना की कि आप मुझे अपना शिष्य बना लीजिए । यह विद्यार्थी आगे बढ़कर मुनिवर जी का सुप्रसिद्ध शिष्य कपालि शास्त्रि बना ।

मद्रास के शिष्यों को मालूम हो गया कि गणपति मुनिवर मद्रास के तिरुवट्टियूर में ठहरे हुए हैं । इस समाचार को सुनकर नारायण घनपाठी जैसे शिष्य वहाँ आये । मुनिवर जी की साहित्य प्रतिभा और अध्यात्मिक जीवन से प्रभावित नारायण घनपाठी ने गुरुजी से अपने सहवास को बनाये रखा । कपालिशास्त्री मुनिवर जी से अष्टावधान करवाना चाहते थे ।

पर तब तक मुनिवर जी में एक परिवर्तन आ गया था । आत्म चिंतन में डूबे रहने के कारण साहित्य प्रतिभा प्रदर्शन में अब उस के मन में कोई रूचि नहीं थी । पर अपने शिष्यों को खुश करने के लिए देखते देखते वसंत तिलक नामक एक छन्द में चार चरणों वाले एक पद्य को लिखकर सुनवाया । गणपति मुनिवर जी यह मानने के लिए तैयार नहीं थे कि काव्य पाठकों का मनोरंजन करता है और कवि को ख्याति प्रदान करता है । उनका विचार था कि काव्य का उद्देश्य अथवा लाभ इस से भी ऊँचा है । जन और समाज को बदल कर एक नूतन युग का काव्य निर्माण कर सकता है । उन का विश्वास था कि राज कालस्य कारण कहने से अच्छा यह होगा - कवि कालस्य कारण कहना ही । उन की दृष्टि में इस प्रकार बदलकर कहना ही ज्यादा समीचीन रहेगा । एक उत्तम काव्य कृति का प्रभाव एक राजाधिराज के प्रभाव से भी ज्यादा होता है । इस बात को अपने उदाहरण से उन्होंने समझाया । भगवद उपासना और ध्यान के संबंध में जो नये विवरण मुनिवर जी दिया करते थे उन को सुनकर उन के मधुर गायन को सुनकर मद्रास के मुनिवर जी के शिष्य 'एक दम पुलकित हो उठते थे । वे एक नूतन अनुभव को भी पाया करते थे । रमण महर्षि के द्वारा दिखाये गये आत्म चिंतन मार्ग पर अग्रसर होते हुए थोड़ा दूध पी कुछ समय तक मात्र आराम करते हुए अपनी साधना को अठारह दिनों तक मुनिवर जी ने चालू रखा ।

कुछ पंडितों का विचार था कि जो आत्मचिंतन और विचार मार्ग पर चल रहे हैं उन के लिए प्रार्थना, पूजा, मंत्रतंत्र आदि की कोई आवश्यकता नहीं । पर वे इस बात को भूल रहे थे कि केवल जपतप के द्वारा ही मन को संस्करित किया जा सकता । इस संस्कार के बाद ही आत्मचिंतन में वे श्रद्धा ले सकते हैं । जप तप आत्म चिंतन नामक एक महासाधना के लिए मन को तैयार करता है । इस दिशा में प्रण लेने के लिए भी मन को तैयार करता है । इन विषयों में गणपति मुनिवर जी के विचार काफी ऊँचे थे । आत्म चिंतन का फल आत्म दर्शन होता है । यह दर्शन सब के लिए साध्य नहीं । तपस्या से जो शक्ति मिलती है उसी के द्वारा ही आत्म दर्शन किया जा सकता है । गणपति मुनिवर जानते थे कि यही एक सही मार्ग है । रमण महर्षि के द्वारा दिखाये गये मार्ग में और खुद के जप तप और ध्यान के मार्ग में मुनिवर ने कोई अंतर नहीं देखा । उन की साधना आत्म चिंतन को पृष्टि देने वाली ही थी - इस बात को भी मुनिवर जी जान गये थे । अठारह दिनों की कठिन साधना को समाप्त कर एक दिन मुनिवर सोये हुए थे । वे बहुत कमजोर पड गये थे । अपने देह के अंगों को हिलाने की शक्ति भी उन में नहीं थी । फिर भी वे ध्यान में लगे हुए थे । अचानक भगवान रमण महर्षि उसके सामने प्रत्यक्ष हो कर खडे हो गये थे । मुनिवर जी उठ बैठना चाहते थे । उन्होंने प्रयत्न भी किया । पर रमण महर्षि ने उन्हे टोका । अपने दाहिने हाथ से उन्होंने मुनिवर जी के सर को दबाया । मुनिवर को लगा मानो कोई एक दिव्य शक्ति उस के शरीर में बिजली की तरह फैल गयी है । मुनिवर जी आँखें खोलना चाहते थे । इतने में रमण महर्षि जी अदृश्य हो गये । मुनिवर जी का विश्वास अब बढा । उनको लगा उस की साधना फलवती होगी । रमण महर्षि जी ने भी इस घटना का समर्थन किया है ।

अपने तिरूवट्टियूर साधना के दिनों के बारे में और अपने अनुभवों का वर्णन उन्होंने ऐसा किया है : तिरूवट्टियूर गणपति मंदिर तक एक बार मैं सूक्ष्म शरीर को धारण कर हवा में तैरता हुआ गया । वहाँ से सिर्फ एक दो मिनटों में अरूणाचल के विरूपाक्ष गुफा जा वापस आ गया ।

XXI पुलिस वालों से क्लेश :

परिवार के बुलावे के अनुसार गणपति मुनिवर तिरूवट्टियूर को छोड़कर थोड़े दिनों के लिए वेल्लूर आये । आने के बाद तपस्या करने के लिए वे पासवाले पडैवीडू (Padaiveedu) रेणुका क्षेत्र पहुँचे । तपस्या के एक अंग के रूप में वे उमासहस्रम् का संशोधन करना चाहते थे । इस लिए अपने साथ वे एक प्रति को भी ले गये ।

वेल्लूर के कुछ लोग गणपति मुनिवर जी के खिलाफ थे । वे एक योजना के अनुसार गणपति मुनिवर जी के बारे में आधार रहित अफवाहे फैला रहे थे । उन पर कई आरोप लगाये गये थे । उन पर आरोप लगाया था कि युवकों को हिंसा मार्ग अपनाने के लिए भडका रहे हैं और उनको गुमराह कर रहे हैं । दूसरा अभियोग यह था कि इन का उमासहस्रम् देशद्रोह के प्रचार करनेवाले श्लोकों का काव्य है । उनका विचार था कि दास्य श्रृंखलाओं को तोड़कर मातृ भूमि को स्वतंत्र करने के लिए मुनिवर जी उमा देवी की प्रार्थना कर रहे हैं । ये श्लोक राज द्रोह को हवा दे रहे हैं । इस लिए पुलिस विभाग उच्च अधिकारी यह आशा दे चुके थे कि इस काव्य को जब्त किया जाय । पडैवीडू और उस के आस पास के प्रांत मानव देह के अध्यात्मिक उन्नति के लिए बहुत उपयुक्त दिखाई पड़ रहे थे । पर्वतों से घेरा हुए इस प्रदेश की मिट्टी सफेद विभूति की तरह रहती है । वहीं कुंडलिनी नदी जन्म लेती है । कहा जाता है कि यहीं जमदग्नि ऋषि ने तपस्या की थी । उन के यज्ञकुंड की विभूति ही यहाँ की सफेद मिट्टी है । यहाँ का उत्स (Spring) जो है उस के बारे

में लोगों का विचार है कि जमदग्नि के कमंडल से फूट पड़ा है । इस क्षेत्र की देवता रेणुका के कई नाम हैं । इस क्षेत्र को रेणुका, वज्रेश्वरी, चंडि, प्रचंड चंडी, भिन्नमस्ता जैसे कई नामों से लोग बुलाते हैं ।

पुलिस वालों को शक था कि यह क्षेत्र ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध काम करने वाले क्रांतिकारियों का अड्डा है । शुक्रवार का दिन देवी दर्शन के लिए उत्तम दिन माना जाता है । इस लिए दो पुलिस अधिकारी वेष बदलकर गणपति मुनिवर जी के चाल चलन पर निगरानी रखने के लिए वहाँ आये । उस समय तक गणपति मुनिवर 27 फेरे लगा चुके थे और एक एक फेरे पर एक एक श्लोक के हिसाब से 27 श्लोक भी पढ़ चुके थे । उन श्लोकों को लिखने के लिए एक चबूतरे पर बैठने गये । पुलिस अफसर वहीं थे । वे उमासहस्रम की प्रति पर इतना ध्यान नहीं दे पाये थे । पासवाले अपने शिष्य दोरस्वामी को बुलाकर उन से कहा : देखो जैसे भी हो इस प्रति को सुरक्षित रखना । वे उस काव्य को ले गये । कुंडलिनी नदी के किनारे पर एक जगह गढ़ा खोद कर वहाँ रख दिया और बालू से उसे ढक भी दिया । इस के बाद गणपति मुनिवर ने उमा सहस्रम काव्य को ढूँढने के लिए आये हुए अफसरों से कहा कि उन के द्वारा विरचित उमा सहस्रम एक उत्तम प्रार्थना ग्रंथ है और उस में आपत्ति जनक बात कुछ भी नहीं है । उन्होंने आगे उन से यह भी कहा कि यह काव्य तिरूवण्णामलै के एक मंदिर में सब लोगों के सामने पढ़ा भी गया है और इसलिए इस में संदेह जनक बात कुछ भी नहीं है । पुलिस अपसर गणपति मुनिवर के पांडित्य और अध्यात्मिक सिद्धियों के बारे में जान गये । उन की वदना भी उन्होंने जाते जाते की थी । जाते जाते दोनों ने गणपति मुनिवर से कुछ दिनों के लिए उस जिले से दूर रहने और उन के विरोधियों के द्वारा दिये जाने वाले क्लेशों से बचने के लिए सलाह भी दिया ।

उस रात को जोरों की वर्षा हुई थी । वर्षा से कुंडलनी नदी में बाढ़ आ गयी थी । बाढ़ में किनारे पर जमीन में गाढ़ा गया काव्य पानी में बह गया । इस घटना के कारण मुनिवर जी विचलित नहीं हुए । भगवान रमण महर्षि को उन्होंने इस प्रकार का संदेश भेजा : जिस शक्ति को अपने आप में जगाने के लिए मैंने उमासहस्रम काव्य की रचना की थी, उस का एक एक शब्द और श्लोक रेणुका देवी जी की कृपा से मुझे याद है । प्रति खो जाने के लिए चिंतित होने की कोई आवश्यकता नहीं ।

XXII परशुरामावतार :

दशावतार में छठवाँ अवतार परशुराम का है । इस अवतार के बारे में अनेक बातें प्रचार में हैं । पहले पांच अवतार शारीरिक और अध्यात्मिक विकास दशाओं को संकेत के द्वारा बताते हैं । परशुराम अध्यात्मिक सिद्धि को पानेवाला पूर्णावतार है । रेणुका क्षेत्र में तप करते समय दशावतारों के बारे में गणपति मुनिवर जी गहराई के साथ सोचा करते थे । जमदग्नि, वसिष्ठ और विश्वामित्र परशुराम अवतार के लिए आवश्यक भूमि का निर्माण कर चुके थे । परशुराम अवतार बादमें आनेवाले रामावतार की पृष्ठ भूमि है । जिस अस्त्र विद्या को विश्वामित्र ने राम को सिखाया था उस विद्या का ज्ञान परशुराम को था । परशुरामावतार के समय भारत के पश्चिम के माहिश्मति में कार्तवीर्य नामक एक राजा था । वह एक यवन राजा था । उन की अनेक पत्नियाँ थी । उन पत्नियों में से एक पत्नि का नाम सत्य था । उस की बहन रेणुका जमदग्नि महर्षि की पत्नी थी । परशुराम जमदग्नि और रेणुका का पुत्र है । परशुराम के आने के पहले सब ऋषि मुनि लोग कार्तवीर्य और उस के अत्याचारों से डरते थे । उस से बचने के लिए वे वनवासी बन गए थे ।

एक बार की बात है । कार्तवीर्य जमदग्नि का आश्रम आया । वहाँ उस ने रेणुका के सौंदर्य को देखा । वह एक दम मोहित हो गया । जमदग्नि की आँखों के सामने उसने रेणुका को घसीटते हुए ले गया । जमदग्नि महर्षि ने अपनी तपःशक्ति के फल को परशुराम को अर्पित करते हुए कहा : जाकर अपनी माँ को बचावो और उसे मार डालो । पर रेणुका देवी के चरित्र पर संदेहों को पाल रखने के कारण पिता ने अपने पुत्र से माँ रेणुका देवी का सिर कटवाया । सर कटकर भूमी पर गिर पड़ा था । पर धड़ अभी जीवित था । इस के रहस्य को योगी जन खूब समझ सकते हैं । कार्तवीर्य अज्ञान का अवतार है । इस अज्ञान के कारण रेणुका नामक एक प्रकाश का उसने अपहरण किया । पर ज्ञान के द्वारा वह प्रकाश अपने उद्गम स्थान सिर से जा मिला । सिर की गंठी खुल गयी और ज्ञान के प्रवेश के लिए मार्ग बनाया । सिर के दो टुकड़ों में फट जाना जगदंबा का एक लक्षण है । सर के दो भागों में बंट जाना हमारे अहंकार के नाश को सूचित करता है । अहंकार के नाश के बाद ही, रमणमहर्षि कहा करते थे कि आत्म दर्शन प्राप्त हो सकता है । रमण महर्षि की बातें अब समझ में आने लगी थी । परशुराम वृत्तांत को फिर से रचने के बार में गणपति मुनिवर जी सोच रहे थे । तभी उन को समाचार मिला कि उन के यहाँ पुत्री का जन्म हुआ है । वे 1908 के मई महीने में पडैवीडु से वेल्लूर के लिए रवाना हुए ।

XXIII देवी दर्शन :

रेणुका देवी जी के प्रसाद होने के कारण गणपति मुनिवर ने अपनी लड़की का नाम वज्रेश्वरी रखा । इस नामकरण के द्वारा देवी जी के प्रति उन के मन में रहने वाली भक्ति को गणपति मुनिवर ने प्रकट किया । इस बीच उमासहस्रम् काव्य की प्रगति

के बारे में पूछताछ करते हुए रमण महर्षि ने इन तक खबर पहुँचाई । मुनिवर जी तिरूवण्णामलै जा भगवान रमण महर्षि जी का दर्शन कर, उनके अनुग्रह से अपनी तपस्या को आगे बढ़ाने के लिए फिर पडैवीडु वापस आये । रात्री के समय थोड़ा सा दूध लेकर लगातार चालीस दिनों तक मुनिवर ने तप किया । अध्यात्म उन्नति के लिए पडैवीडू अत्यंत उचित स्थान था । वहाँ जैसा शांत वातावरण, नदी, कानन और देवी जी का मंदिर और कहीं नहीं था ।

तपस्या का आखिरी दिन था । अर्धरात्री का समय था । अचानक गणपति मुनिवर जी का शरीर एक बृहदाकार में बढ़ने लगा । अव्यक्त एवं अवर्णनीय आनंद का अनुभव वे कर रहे थे । तब पीतांबर वस्त्रों से अलंकृत एक सुन्दर स्त्री, जिसके देह से तेज फूट रहा था, मंदगमन से मुनिवर जी के पास आ बैठ कर उन के दाहिने पैर को छूकर जगाया और अपने पीछे पीछे आने के लिए कहा ।

मुनिवर जी उस सुन्दर स्त्री के पीछे पीछे चलने लगे । रेणुका देवी जी के मंदिर के पश्चिम दिशा में स्थित विल्व वृक्ष के चबूतर पर जा बैठी । मुनिवर ने उस स्त्री से पूछा : आप कौन हैं ? वह स्त्री मंदहास करते हुए पास वाले कुमारस्वामी के मंदिर की ओर ले गयी और वहाँ के शक्तायुध को देकर गर्भ गृह में प्रवेश कर ओझल हो गयी । तब जाकर मुनिवर को होश आया । धीरे धीरे वे होश संभालने लग गये थे । फिर उनका शरीर बढ़ने लगा । वह सुन्दर स्त्री फिर एक बार दिखाई देने लगी थी । अब की बार उन के बाये पैर को छूकर उन्हें बुलाया । मुनिवर जी के शरीर में एक नयी शक्ति प्रवाहित होने लग गयी थी । मुनिवर उस स्त्री को आश्चर्य से देखने लगे थे । और एक शक्तायुध को दे अब की बार मंदिर के उत्तरी दिशा में स्थित मंडप में जा बैठ गयी । वहाँ की दीवार से औषधी को

निकाल कर मुनिवर को देते हुए उस ने इस प्रकार कहा : वत्स लगातार इक्कीस दिनों के लिए तप करो । तब तुम्हें सिद्धि मिलेगी । इस घटना के उपरांत मुनिवर लेट कर सो गये । दूसरे दिन जागकर रात वाली घटना के बारे में सोचने लगे । पैर पर के निशाना को देखने पर उन को विश्वास हो गया कि कल रात वाली घटना स्वप्न नहीं है पर वह एक वास्तविकता है । उन्होंने यह भी जाना कि उन पर देवी जी का अनुग्रह है और कल रात वाली घटना उस के लिए प्रमाण है । कुमारस्वामी जी के मंदिर के पास बैठ कर कल रात वाली घटना की याद करने लगे । फिर एक बार मुनिवर ने उस सुन्दर स्त्री के मंदहास मधुर कंठ और ममता युक्त बुलावे का अनुभव किया । उनकी पीठ में एक शक्ति का प्रसार हुआ । कुमारस्वामीजी के छः मुख वास्तव षट् चक्रों के लिए संकेत हैं । अपने में सोई हुई शक्ति को जगा ने वाला साधक माथे पर के रूद्र ग्रंथि के फट जाने पर, अमृत नाडि के द्वारा हृदय केन्द्र में रहने वाली शक्ति को देखता है । इस शक्ति का संकेत ही एक मुख वाले कुमार स्वामी है । हृदय की शक्ति का जब दर्शन होता है तब अमृतसिद्धि प्राप्त होती है । रूद्र ग्रंथि को तोड़ने का कार्य कुमारस्वामी जी के भाई गणपति के अनुग्रह से संपन्न हो सकता है । वज्रायुध समान वाले गणपति की सूंड से यह कार्य संभव हो सकता है । बाह्य संसार में आनेवाले अडचनों को, विघ्नों को विघ्न विनायक दूर करते हैं । मन की दुर्बलताओं का निवारण कुमारस्वामी जी करते हैं । भगवान् रमण महर्षि अकसर कहा करते थे : मन के विघ्नों और अडचनों को अर्थात् रागद्वेषों को तज कर आत्म चिंतन में डूब जाओ । आज गणपति मुनिवर को श्री रमण महर्षि की वे बातें समझ में आयीं । आत्म चिंतन के लिए एक शक्ति की आवश्यकता होती है । मुनिवर सोच में पड़ गये थे कि वह शक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है । तब वे अनुभव करने लगे कि एक दिव्य पुरुष कुमारस्वामी के मंदिर में प्रवेश कर शक्तायुध के साथ

बाहर आया है । वह दिव्य पुरुष एक क्षण के लिए मुनिवर को देख अदृश्य हो गये । तरत मुनिवर के स्मृति पथ में ऋग्वेद का एक सूक्त आया । सत्ताईस मंत्रों वाले इस सूक्त में एक मंत्र एक विराट छंद में था । जब मुनिवर जी इस मंत्र के अर्थ के बारे में सोच रहे थे तब उन के अनुभव में आया कि वह एक अस्त्र मंत्र है । यह मंत्रशक्ति परशुराम के पास थी । आत्म चिंतक जो होते हैं उन की रक्षा यह मंत्र शक्ति कर सकती है । इस मंत्र के दृश्य को देखने का सौभाग्य वसिष्ठ ऋषि को मिला था । अब यह गणपति मुनिवर को मिला है । कृतज्ञता को प्रकट करते हुए रेणुका देवी जी और गुरु रमण महर्षि को मुनिवर ने नमस्कार किया ।

XXIV फिर एक बार पुलिस का तंग :

पडैवीडू से वेल्लूर आकर गणपति मुनिवरजी ने कुछ समय के लिये आराम किया । रेणुका देवी जी की कृपा से प्राप्त नये वेद मंत्र को अनेक शिष्यों को मुनिवर जी ने सिखाया । इस मंत्र के अधि देवता इन्द्र थे । इस लिए इस मंत्र को उपदेश के रूप में जितने शिष्यों ने प्राप्त किया था उन लोगों ने मिलकर एक संघ की स्थापना की । उस संघ का नाम था इन्द्र संघ । इस संघ के लोग ध्यान से उस नये वेद मंत्र का जप करने लग गये थे ।

उन्हीं दिनों में तबादले पर आये पुलिस अफसर चिन्नस्वामी (Chinnaswamy) गणपति मुनिवर जी की जनप्रियता को सह नहीं पाये । उन के कार्यकलापों (Activities) पर पाबंदी लाकर उन को दंड दिलाने पर वे तुले हुए थे । इस बात की चर्चा वे हर कहीं किया करते थे । मुनिवर जी के हितैषी, शिष्य और परिवार के लोग इस से भयभीत हुए । वेल्लूर छोड़ और किसी सुरक्षित स्थान में जा बसने के लिए सब लोगों ने मुनिवर से बिनती की ।

लोगों की सलाह के अनुसार वे वेल्लूर छोड़कर जाने के लिए राजी हो गये । जान के पहले दुर्गा देवी की प्रार्थना उन्होंने इस प्रकार की :

वैरिदल निर्दलन खड्गवर पाणि
 वाससि पदोदर्शन वाससि च शूणे
 नेत्रामिश पावक विशेषित ललाटि
 पापम् अखिलम् जहि मृगाधिपति घोटि

“हे जगदंबे शत्रुओं के नाश के लिए एक हाथ में खड्ग ले, लाल वस्त्रों को धारण कर लाल पांव और होठों से अलंकृत होकर, माथे पर अग्नि समान प्रज्वलित होनेवाले तीसरे नेत्र वाली, सिंह वाहिनी पधारो । सब को नाश कर दो ।”

इस श्लोक को बाद में उमा सहस्रम् में जोड़ा गया ।

गणपति मुनिवर वेल्लूर छोड़कर सुदूर रहनेवाले हंपि (Hampi) के लिए रवाना हुए । गुतकल स्टेशन में उतरकर दूसरी गाड़ी में बैठ कर वे प्रयाण कर रहे थे । एक साधुवेषधारी भी उनके साथ उस डिब्बे में बैठकर सफर कर रहा था । हंपी जाने के लिए मुनिवर होसपेटा (Hospet) स्टेशन में उतरे । वहाँ पुलिसवाले मुनिवर को घेर कर साधु वेशधारी उन के सह यात्री के बारे में उनके बर्ताव के बारे में कई सवाल करने लग गये । मुनिवर ने स्पष्ट कह दिया कि वे उस साधु के बारे में कुछ नहीं जानते हैं । रात काटने के लिए मुनिवर एक धर्मशाला पहुँचे । वही वे आराम कर रहे थे । वे एक छोटी सी बात के लिए वेल्लूर छोड़ने के विषय के बारे में सोच रहे थे । उसी समय वह साधु वहाँ पहुँचा । कुछ समय के बाद पुलिस आयी । मुनिवर के साथ रहने वाले उस साधु को पूछ-ताछ के लिए पुलिस पकड़ कर ले गयी । दूसरे दिन सुबह उस साधु को इन्स्पेक्टर के सामने पुलिस वालों ने पेश किया । एक कुख्यात व्यक्ति को पकड़ने के संदर्भ में काव्यकंठ गणपति मुनिवर को कष्ट देने के

लिए इन्स्पेक्टर ने मुनिवर से क्षमा मांगी । वे इन्स्पेक्टर मुनिवर के शिष्य भी बन गये ।

अबतक मुनिवर को वेल्लूर से एक पत्र मिल गया था । पत्र में मुनिवर के हितैषी लोग और शिष्यों ने लिखा था : वेल्लूर के पुलिस अफसर चित्रस्वामी का निधन हो गया है और आप को तग करने वाले पुलिस अफसरों को अपनी करनी पर पश्चात्ताप हो रहा है । अतः आप वेल्लूर लौट आइए ।

XXV दक्षिण के क्षेत्रों का दर्शन :

हंपी, हंपाक्षेत्र (Hampa Kshetra) जैसे ऐतिहासिक और पवित्र क्षेत्रों का संदर्शन कर मुनिवर मावुलि (Mavūli) नामक गांव के पास तपस्या के लिए बैठ गये । वहाँ के ग्रामवासी गणपत मुनिवर को जिस आहार की आवश्यकता थी उस का प्रबंध करने लगे थे । आत्मचिंतन में डूबे मुनिवर की तपस्या निद्रा के कारण भंग हो रही थी । फिर से उन्होंने तपस्या करना प्रारंभ किया । पंद्रह दिनों के बाद उस के सामने एक बालिका आकर खड़ी हो गयी । उस बालिका ने अध्यात्म लोक के अनेक रहस्यों को समझाया । उसने आगे आने वाली घटनाओं के बारे में भी मुनिवर को सूचना दी । उसने आगे यह भी समझाया कि परशुराम क्षेत्र में जो अस्त्र विद्या प्राप्त हुई है उस को पाने के लिए आज के लोग योग्य नहीं हैं । विद्या को पाने के लिए आवश्यक सामर्थ्य भी उन में नहीं है । जगत कल्याण के लिए इस विराट मंत्र को सिर्फ उन्हीं लोगो को पढ़ाना है जो इस के लिए योग्य हैं, जिस में पाने की अर्हता है । उनको ऐसा अनुभव हुआ मानो वह बालिका उन से यह भी कह रही है : वेद मंत्रों के रहस्यों के बारे में जनता को समझावो ! रमण महर्षि की वाणी का प्रचार करो । लोगों में अध्यात्मिक जागृति लाओ ! अपनी तपस्या को पूरा कर मुनिवर वेल्लूर वापस आ गये । मावुलि ग्रामवासी भक्ति श्रद्धा

और आदर के कारण मुनिवर जी को ' द्राविड राजयोगी ' के नाम से पुकारा करते थे ।

वेल्लूर से अरूणाचलम पहुँच कर मुनिवर जी ने रमण महर्षि का दर्शन किया । वहाँ से दक्षिण भारत के तीर्थ स्थानों को देखने के लिए यात्रा पर निकले । सती देवी की तपो भूमि कन्याकुमारी में देवी दर्शन को पाया । वहाँ से शुचीन्द्रम् (Suchindram) जैसे क्षेत्रों से होते हुए वे रामेश्वरम् (Rameswaram) आये । समुद्र राज का पराभव करने वाले राम और कार्तवीर्य को हराने वाले परशुराम -इन दोनों में मुनिवर ने अभेद को देखा । इस के बाद मदुरै (Madurai), पापनाशम (Papanasam), श्रीरंगम् (Sri Rangam) और जम्बुकेश्वर (Jambukeswar) जी का दर्शन कर जम्बुकेश्वर में थोड़े दिनों के लिए ठहरे । वहाँ उन्होंने तपस्या की । तबतक उमासहस्रम काव्य की पुनर्रचना के काम को मुनिवर ने उठाया था । उन को सात सौ श्लोक याद आये । बाकी श्लोकों को प्रयत्न करने पर भी याद नहीं कर पाये । इस विषय के बारे में मुनिवर ने रमणमहर्षि को लिखा । उस के बाद जम्बुकेश्वर से मुनिवर तिरूवट्टियूर आये । वहाँ अपने शिष्य कपालिशास्त्री की सहायता से अनेक प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन किया । वे हजारों पन्नोवाले ग्रंथों को शीघ्र ही पढ़ लेते थे । पढ़ने के बाद पठित विषयों को भूले बिना याद रखते थे । अपने गुरुवर की इस अद्भुत ग्रहण शक्ति पर शिष्य कपालि शास्त्री को आश्चर्य हुआ । यहाँ हमें यह बात याद रखनी है कि स्वामी विवेकानंद के पास भी ऐसी ही स्मरण शक्ति थी । तिरूवट्टियूर से शांतिगिरि नाम से प्रसिद्ध तिरूत्तणि (Tiruttani) मुनिवर पहुँचे । वहाँ कुछ दिनों के लिए तपस्या की । इसके बाद अपने पुत्र महादेव के उपनयन के लिए सन् 1910 के फरवरी महीने में वेल्लूर वापस आ गये ।

XXVI पश्चिमी साधक :

मुनिवर जी के पंचापकेश शास्त्री जैसे शिष्य चाहते थे कि उन के गुरुजी गणपति मुनिवर मद्रास में बस कर उनका मार्ग दर्शन करते रहे । पर गणपति मुनिवर जी मद्रास आये बिना सीधा तिरुवण्णामलै अपनी पत्नी समेत अपनी साधना को आगे बढ़ाने के लिए आम के पेड़वाले गुफा पहुँचे । उन का पुत्र महादेव शास्त्री तिरुवण्णामलै आकर बस गया था । वह मधुकर भिक्षा से अपने माता-पिता की सेवा कर रहा था । तपश्चर्या में रत पतिदेव की सेवा पत्नी विशालाक्षी करती थी । मुनिवर जी के इस वानप्रसत्ताश्रम के जीवन को देखकर भगवान रमण महर्षि बहुत संतुष्ट हुए ।

एक बार अपने शिष्यों के साथ भगवान रमण महर्षि गिरि प्रदक्षिणा (अरूणाचल पहाड़ के फेरे लगाना) के लिए निकले । आमवृक्षवाले गुफा के पास आकार वहीं बैठ गये । उन्होंने कहा मैं अनेक नक्षत्र लोको को देख रहा हूँ । गणपति मुनिवर जी को तत्काल अथर्व वेद के स्कंद सूक्त की याद आ गयी । उस के बाद गणपति मुनिवर ने कहा मैं रमण महर्षि के द्वारा कुमारस्वामी का दर्शन कर चुका हूँ ।

भगवान रमण के साथ गिरिप्रदक्षिणा करना उन के शिष्य के लिए एक भाग्य की बात थी । गिरि प्रदक्षिणा का अर्थ है अध्यात्मिक केन्द्र हृदय की ओर यात्रा । यह सौभाग्य गणपति मुनिवर को मिला ।

एक महीने के बाद शिष्यों के अनुरोध पर मुनिवर अपनी पत्नी समेत मद्रास आये । उन दोनों की देखभाल करने के लिए वेल्लूर से अप्पू और उन का भाई भी आये । उस समय पश्चिम का एक साधक भी उन का शिष्य बन गया । उन दिनों में थियोसफी धर्मागमनूयायी (Followers of Theosophy) प्रचार कर रहे थे कि बहुत

शीघ्र इस संसार के उद्धार के लिए एक अवतार पुरुष आने वाला है । डा. अनिबिसेंट (Ani Besent) का मत था कि श्री जिड्डु कृष्णमूर्ति (J. Krishnamurthy) ही अवतार पुरुष हैं । सन् 1911 के जनवरी महीने में थियोसफी (दिव्यज्ञान) को मानने वाले डा. फ्रैंक हंफ्रिस (Dr. Frank Hamfris) नामक एक सज्जन बंबई आये । उन की नियुक्ति एक पुलिस अफसर के रूप में हो गयी थी । प्रशिक्षण (Training) के लिए वे वेल्लूर आने वाले थे । इतने में ज्वर पीडित होने के कारण बंबई के एक अस्पताल में उन को भर्ती होना पडा । एक बार अपने सूक्ष्म शरीर के द्वारा वेल्लूर प्रशिक्षण केन्द्र के तेलुगु अध्यापक सर्वेपल्लि नरसिंहय्या को देखा । नरसिंहय्या जी गणपति मुनिवर के शिष्य थे । वेल्लूर आने के बाद एक दिन सपने में हंफ्रिस जी ने गणपति मुनिवर जी को देखा । वे बहुत खुश हुए । उन को लगा मानो उन के गुरुजी का दर्शन हो गया है । फिर एक बार अपने सपने में हंफ्रिस जी ने कौपीन धारी (लंगोटी पहने) एक व्यक्ति को देखा । नरसिंहय्या जी के पास रहने वाले फोटों को देखने के बाद उसे मालूम हुआ कि उन्होंने सपने में रमण महर्षि और गणपति मुनिवर को ही देखा था । उन दोनों को वे पहचान गये । उन दोनों को अपने अध्यात्मिक गुरुओं के रूप में हंफ्रिस ने स्वीकार किया । नरसिंहय्या के द्वारा वे पहले गणपति मुनिवर का और गणपति मुनिवर के द्वारा रमणमहर्षि जी का दर्शन कर लेना चाहते थे । नरसिंहय्या ने सहायता करने के लिए वादा किया ।

सन् 1911 के नवंबर महीने में तिरूवण्णामलै में थियोसफी धर्मावलंबियों का अधिवेशन आयोजित हो चुका था । हंफ्रिस इस अधिवेशन में भाग लेने आये थे । अधिवेशन के बाद गणपति मुनिवर की सहायता से रमणमहर्षि जी का दर्शन भाग्य हंफ्रिस जी को मिला । जिस कौपीन धारी को उन्होंने अपने सपने में देखा था अब उन्हीं को अपने आंखों के सामने हंफ्रिस ने पाया ।

रमण महर्षि को देखते ही हंफ्रिस नतमस्तक हुए और गहरे ध्यान में अपने आप को भूल गये । उस ध्यानावस्था से जागकर रमण महर्षि से हंफ्रिस ने पूछा : क्या इस संसार की भलाई मुझ से संपन्न होनेवाली है । “ पहले अपना उद्धार कर लीजिए । बाद में संसार के बारे में सोचा जा सकता है ” रमण महर्षि ने उत्तर दिया । रमण महर्षि के इस उत्तर से हंफ्रिस को एक नया प्रकाश मिला । फिर उन्होंने रमण महर्षि से प्रश्न किया : कृष्ण, ईसा की तरह क्या मैं भी कुछ चमत्कारों को कर दिखा सकता हूँ । रमण ने जवाब दिया : इन महापुरुष ने जब चमत्कारों को कर दिखाया तब उन लोगों में यह विश्वास नहीं था कि उन के द्वारा ही सभी चमत्कार हो रहे हैं । रमण जी के संक्षिप्त परंतु अर्थपूर्ण उत्तरों को सुनकर हंफ्रिस की आंखें खुल गयी । ‘ अहम ’ “ मैं ” को भूल कर निष्काम कर्म में डूबे रहने वाले महानुभावों के द्वारा भगवान अपने कार्य को संपन्न करवाते हैं - इस सत्य को हंफ्रिस जान गये । जिस महापुरुष की प्रतीक्षा थियोसफी धर्मावलंबी कर रहे थे वह महापुरुष, हंफ्रिस जान गये कि और कोई नहीं है । वे तो भगवान रमण महर्षि जी ही हैं । आत्मचिंतन के मार्ग को रमण महर्षिजी की कृपा से हंफ्रिस जान गये । अध्यात्मिक ज्ञान की खोज में सूदूर विदेश से हंफ्रिस भारत आये थे । उनको भगवान रमण महर्षि के रूप में गुरु मिल गया था । वे अपने जीवन के लक्ष्य तक पहुँच पाये थे । पुलिस विभाग की नौकरी को उन्होंने छोड़ दिया । स्वदेश पहुँचकर ईसाई धर्म के वे फादरी बन गये ।

XXVII उडुपि और गोकर्ण की यात्रा :

सन् 1910 के मई महीने से लेकर सन् 1912 के जनवरी महीने तक, लगभग डेढ़ वर्ष के लिए मुनिवर जी मद्रास में रहे । पर शोर-शराबे से भरे इस शहरी जीवन से, शहर के नकली पन से प्रकृति प्रेमी मुनिवर जी का मन ऊब गया था । अपने शिष्यों को खुश करने के लिए, इतने दिन मद्रास में वे थे । कभी कभी इस बीच वे तिरुवण्णामलै हो रमण महर्षि जी के दर्शन कर यात्रिक नगर जीवने से थोड़े समय के लिए ही क्यों

नहीं सही मुक्ति पाते थे । साहित्य तत्वशास्त्र और आध्यात्म संबंधी नातों पर चर्चा करने, मार्ग दर्शन पाने के लिए रोज मुनिवर के पास कई व्यक्ति आया करते थे । इस अवसर का लाभ उठाकर जो भी उन के पास आते थे उनको रमण मार्ग, जीवन और उपदेशों से अवगत कराते थे ।

इन्हीं दिनों में गणपति मुनिवर की पत्नी ने श्री शंकराचार्य के जन्म स्थान के दर्शन की इच्छा को प्रकट किया । पति-पत्नी दोनों कालडि (Kaladi) पहुँचे । कालडि शंकरमठ के चंद मुख्य लोगों ने इन दंपतियों का स्वागत किया और उनके जप तप के लिए आवश्यक सुविधाओं का प्रबंध किया । कुछ दिनों के बाद श्रीकृष्ण क्षेत्र उडुपि पहुँचे । गणपति मुनिवर के शिष्य वासुदेव शास्त्री जी उडुपि के ही रहने वाले थे । उस समय वे उडुपि में नहीं थे । पर उन की पत्नी ने दोनों का स्वागत किया । घर में ठहरा कर अतिथि सत्कार किया । उडुपि के पास वाले बाल भंडेश्वर क्षेत्र पहुँचे । वहाँ का प्रशांत वातावरण दोनों को मुख्य रूप से मुनिवर जी को अधिक भाया । इस लिए वहीं पर रहकर कुछ दिनों के लिए मुनिवर ने अपनी तपस्या को जारी रखा । पूरे दिन को तपस्या में बिताकर रात्री के समय आहार के लिए क्षेत्र पहुँचते थे । किसी एक घर के चबूतरे पर थोड़े समय के लिए सोकर सूर्योदय के पहले अपने एकांत स्थान तक पहुँच जाते थे । मुनिवर की तपस्या को एक व्यक्ति ने देखा । वह आश्चर्य चकित हो उठा । मुनिवर जी के तप के पूरा होने तक वह वहीं रहा । इस के बाद पास वाले एक पोखरे के पास उन्हें ले गया । स्नान कराने के बाद पास वाले एक मठ को अपने साथ ले गया । मठ के लोगों ने इन का स्वागत कर फलों का रस दिया । इस प्रकार की घटना रोज घटती थी । धीरे धीरे उडुपि के दूसरे मठाधिपतियों को भी मुनिवर जी की साधना के बारे में पता चला । एक महातपस्वी को उडुपि में देखकर वे बहुत खुश हुए । सब ने मिलकर इन का सम्मान करना चाहा । हिन्दू धर्म की जितनी भी शाखायें थी उन सब शाखाओं पर लागू होनेवाले सौ श्लोकों को बहुत कम समय में

रचकर मुनिवर ने मठाधिपतियों के सम्मुख रखा । बाल भंडेश्वरी की स्तुति करते हुए विविध हिन्दू पंथों की एकता को इस प्रकार वर्णित किया :

ब्रह्म दास्येन योगेन
ज्ञानेन च मनीषिणः ।
अर्चयं तस्तः चिंत यतः
प्राप्नु वंतीति में मतिः

अर्थात् सेवा साधना और ज्ञान मार्ग को अपना कर उपासना अथवा ध्यान के द्वारा प्राणि परमात्मा को देखता है

बाल भंडेश्वर क्षेत्र संबंधी अपने अनुभवों को मुनिवर ने लिखकर रमण महर्षि जी को बताया । उन अनुभवों को पत्र द्वारा जानकर रमण महर्षि बहुत खुश हुए । मुनिवर द्वारा लिखे गये सौ श्लोकों को लिखवाकर रमण ने अपने पास रख लिया । उडुपि से गोकर्ण जाने के लिए मुनिवर तैयार हुए । तब एक घटना घटी । एक हिन्दू विधवाने अपने लडके को तजकर ईसाई धर्म को अपनाया । बालक तो किंकर्तव्य विमूढ़ हो गया । मुनिवर जी के पास आकर अपनी दुख भरी कहानी उस बालक ने सुनाई । मुनिवर जी का हृदय पिघल गया । उसे दीक्षा दिलाकर उस बालक का उपनयन भी मुनिवर ने किया ।

सन् 1912 के अप्रैल महीन में गणपति मुनिवर जी अपनी पत्नी और पुत्र के साथ उडुपि से गोकर्ण आये । गोकर्ण समुद्र में डूबा प्रचीन क्षेत्र है । इस क्षेत्र का उद्धार वहाँ के बुजूर्गों और श्रद्धावानों के अनुसार परशुराम ने किया था । लोगों का यह भी विश्वास है कि गोकर्णेश्वर की स्थापन स्वयं गणपति ने ही की थी । पहुँचने के तुरंत बाद उस क्षेत्र के मुख्य स्थानों के बारे में जानकर अपनी साधना में मुनिवर जी लग गये । गोकर्णेश्वर मंदिर के पुजारी जान गये कि गोकर्ण में एक महान विद्वान और उच्च कोटि के साधक आये हुए हैं । इस बात का प्रचार भी पुजारी जी ने गोकर्ण में किया ।

इस क्षेत्र में अनेक वेद पारंगत थे । होसामने (अर्थात् नया घर) गणेश हेग्गडे (Ganesh Heggade) के कारण ही ये पंडित वहाँ आकर बस गये थे । उन्होंने एक संस्कृत पाठशाला की स्थापना वहाँ की थी । वेदशास्त्रों का अध्ययन परंपरागत रीति से वहाँ हुआ करता था । आवश्यक सुविधाओं का प्रबंध उन्होंने किया था । एक महा विद्वान को अपने नगर में आया जानकर वहाँ के विद्वद्जनों ने अपार आनंद का अनुभव किया । पर गणपति मुनिवर जी अपने पांडित्य के प्रदर्शन के पक्ष में नहीं थे । उन की रुचि मात्र तपस्चर्या में थी ।

उन्हीं दिनों में बंबई के सुप्रसिद्ध संस्कृत विद्वान अनंत शास्त्री ने गोकर्ण के संस्कृत विद्यापीठ को एक पत्र लिखा था । अपने गोकर्ण आने की खबर देते हुए उन्होंने कहा था वेद संबंधी भाषणों के बीच में वहाँ के अर्थात् गोकर्ण के विद्वानों से वाद-प्रतिवाद करने के लिए मैं एक दम तैयार हूँ । गोकर्ण के विद्वान अपने स्वभाव से शांत प्रिय हैं । ये वाद-प्रतिवाद को पसंद नहीं करते थे ।

संस्कृत के विद्यापीठ, अनंतशास्त्री जी की ललकार को स्वीकार करना चाहता था । इस लिए गोकर्ण में ठहरे हुए गणपति मुनिवर के पास जा अनंत शास्त्री के पत्र के बारे में उन को बताया । इतना ही नहीं सबने मिलकर गणपति मुनिवर से प्रार्थना की कि जैसे भी हो आप हम सब लोगों की तरफ से इस वाद-विवाद में भाग लीजिए । प्रार्थना को स्वीकार कर गणपति मुनिवर ने उन से कहा : जब तक यह बहस शुरू न हो जाय तब तक मैं अपनी साधना में लगा रहूँगा । इस विषय में मैं आप लोगों से सहकार मांग रहा हूँ । सब लोग मान गये ।

श्री अनंतशास्त्री तर्क विद्या के बड़े विद्वान थे । अपने तर्कों को प्रस्तुत करने में और प्रतिवादियों के तर्कों के खण्डन में ये सिद्ध हस्त थे । पूरे महाराष्ट्र में इन से चर्चा या वाद प्रतिवाद करने के लिए कोई तैयार नहीं था । पर अनंतशास्त्री गणपति मुनिवर जी के बारे में जानते नहीं थे । अपने पांडित्य एवं सामर्थ्य के कारण अनंतशास्त्री में आत्म विश्वास की मात्रा अत्यंत अधिक थी ।

चर्चा या वाद विवाद का दिन आ गया । दीर्घ तपस्या के कारण मुनिवर जी शारीरिक रूप से बहुत बलहीन थे । पर उन की मानसिक प्रखरता कम नहीं हुई थी । अनंत शास्त्रीजीने की अपने वाद को इस प्रकार प्रारंभ किया करते थे : आप पहले शैव, वैष्णव अथवा अद्वैत तत्व का मंडन कीजिए और उस के बाद खंडन भी कीजिए । सब से अनंत शास्त्री इसी प्रकार कहते थे । इस के बाद ही वाद विवाद शुरू हुआ करता था । पर अब की बार उन्होंने गणपति मुनिवर से कहा : आप सिद्ध कीजिए कि शिव ही सर्वोत्तम है और इस के बाद उन के लिए जवाब भी दीजिए । इस अह्वान को गणपति मुनिवर ने स्वीकार किया । अपने खंडन या मंडन के लिए गणपति मुनिवर जी ने वेदों का ही सहारा लिया । अपने तर्कों के द्वारा वे वेदों की महानता को भी सिद्ध करते जा रहे थे । सब से पहले उन्होंने वेदों के संदेश को सुनाया । उन्होंने यह साबित किया कि ये वेद हमारे धर्म का मूल आधार है । उन्होंने आगे यह भी कहा कि पंडित चाहे जो कोई भी हो वेदों की महानता का उसे विस्मरण नहीं करना चाहिए । मुनिवर जी का विचार था कि पुराण वेदों के सही अर्थ का प्रचार नहीं कर रहे हैं । इस लिए वेदों के सत्य को पुराणों के द्वारा जानने का प्रयत्न करना सही मार्ग नहीं है । वेदों के अनुसार इंद्र सब से बड़े देव है । शिव जी और विष्णु जी उस इंद्र के दो अंगों का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं । शैव और वैष्णव पंथ दो अलग पूजा क्रम को बताते हैं । पर दोनों का उद्देश्य अथवा लक्ष्य साक्षात्कार के लिए मार्ग ढूँढना है । गणपति शास्त्री जी के वाद रीति को देख और सुनकर ललकार ने में रूचि रखने वाले अनंतशास्त्री को डर होने लग गया था । उनको मालूम हो गया कि वे एक महापुरुष के साथ वाद विवाद कर रहे हैं । चर्चा या वाद विवाद को आगे बढ़ाये बिना अनंतशास्त्री ने अपने आप को गणपति मुनिवर के सामने एक शिष्य के रूप में अर्पित कर लिया । गणपति शास्त्री जी ने अनंत शास्त्री जी के पांडित्य और वाद पटिमा की प्रशंसा करने लगे । गोकर्ण के पंडितों को भी इस वाद-प्रतिवाद के कारण धर्म के कई नये अर्थ

समझ में आ गये । ' शुष्क वाद विवाद अकसर धर्म को गुमराह करते हैं । धर्म का शुद्ध निज रूपों का चित्र वेदों में ही मिल सकता है '— यह गणपति मुनिवर का विचार था ।

गोकर्ण के संस्कृत विद्यापीठ में आयोजित वाद-विवाद प्रतियोगिता के कारण गणपति मुनिवर जी का नाम चतुर्दिशाओं में फैल गया । वे वेङ्कट रमण भट्ट के यहाँ ठहरे हुए थे । वहाँ भेंट करने वालों का तांता सा लग गया । इस बीच कुछ लोगों के अनुरोध पर ज्योतिष शास्त्र से संबंधित कुछ प्रधान तत्वों पर शोध कर ' लघु संहिता (Laghu Samhita) नामक ग्रंथ की रचना गणपति मुनिवर ने की । गोकर्ण के विद्वानों के साथ चर्चा करते समय गणपति मुनिवर जी को एक नयी बात मालूम हो गई । ऋग्वेद के जिन भागों के बारे में उन को पता नहीं था वे भाग वहाँ गोकर्ण में प्रचार में हैं । ये भाग महाभारत के नायक श्रेष्ठ श्री कृष्ण से संबंधित थे । अस्त्रविद्या के जिन गुढातिगूढ विषयों को महाभारत के वीर जानते थे उन का प्रस्ताव ऋग्वेद में था । ऋग्वेद के सूक्तों को पंडितों के साथ फिर एक बार गहराई से अध्ययन करने का अवसर गणपति मुनिवर को मिला । इस अध्ययन के द्वारा सूक्तों के निगूढ रहस्य को जानने का प्रयत्न मुनिवर ने किया । कुछ सूक्त बाह्य दृष्टि को ऐसे लगते थे मानो वे पूजा की रीति को बता रहे हैं । पर गणपति मुनिवर को अध्ययन के बाद मालूम हुआ कि उन सूक्तों में अध्यात्मिक सहस्य भी छिपे हुए हैं । एक सूक्त के विविध भागों को एक साथ लेकर उन में छिपी एकता की तह तक जब पहुँचते हैं तभी उन के गूढार्थों को समझ सकते हैं । अपने अनुभव से मुनिवर जी इस बात को जान गये । ये बातें साधारण विद्वानों की समझ में नहीं आ सकती । अगर आ सकती हैं तो गणपति मुनिवर जी जैसे साधकों को मात्र !

वेदों का अनुवाद पाश्चात्य भाषाओं में हुआ था । इस संबंध में मुनिवर जी ने अपनी अतृप्ति प्रकट की थी । वेदों के अंतरार्थ को जाने बिना अगर कोई उन का अनुवाद करता है तो वह उनके सही अर्थ को कभी प्रतिबिंबित नहीं कर सकता !

वेदों को ठीक तरह से समझ सकने में हमारे भारतीय विद्वान भी सफल नहीं हो पाये हैं । वेद के कुछ भागों से संबंधित दूसरे भागों को उन से अलगकर उन के अर्थों को वे समझ नहीं पा रहे हैं । कुछ विद्वानों का कहना है कि वेदों में नक्षत्र लोकों का वर्णन है । वे आगे यह भी कहते हैं कि सांसारिक भोगों को भोगने और दुष्ट शक्तियों से अपने आप को रक्षा करने के लिए उपयुक्त प्रार्थनायें हैं । गणपति मुनिवर कहा करते थे कि वेदों के हृदय को जानने के लिए तपस्या और आत्म चिंतन ही उद्युक्त साधन हैं । इन के द्वारा ही वेदों के रहस्यों को जाना जा सकता है । वेदार्थ अन्वेषण जैसे महत्वपूर्ण कार्य के लिए, गणपति मुनिवर जान गये कि कोलाहल युक्त घर का वातावरण उपयुक्त नहीं है । इसलिए गोकर्ण के बाहर प्रशांत वातावरण में स्थित गजानन भट्ट के निवास गृह को गणपति मुनिवर जी पहुँच गये । लगता है गजानन भट्ट और गणपति मुनिवर में पूर्वजन्म का कुछ नाता था । गजानन भट्ट को गणपति मुनिवर ने अपना शिष्य बनाया । गजानन भट्ट दैवरत गोत्रज थे । इस लिए गणपति मुनिवर उसी नाम से गजानन भट्ट को बुलाने लगे । दैवरत जी वास्तव में गोकर्ण संस्कृत विद्या पीठ के संस्थापक गणेश हेग्गडे के पौत्र थे । वे ऋक्, यजुर और सामवेद के पारंगत थे । एक मठाधिपति बनने के लिए वे प्रशिक्षण पा रहे थे । वे अपने समय को गुरु सेवा, अध्ययन साधना जैसे कार्यों में व्यतीत किया करते थे ।

गणपति मुनिवर जी के वेदाध्ययन का एक क्रम था । वे एक लक्ष्य को लेकर उस का अध्ययन कर रहे थे । प्राचीन ऋषियों ने जिन मंत्रों को देखा था उन को पढ़ कर उन की टीका करनी थी । महाभारत के आधार पर वे ऋषियों के काल का निर्णय करना चाहते थे । इस के बाद वे जानना चाहते थे कि किस मंत्र का संबंध किस सूक्त से है और कौन सा सूक्त किस व्यक्ति से संबंधित है ।

उन को यह भी प्रमाणित करना था कि ऋषियों को जो अस्त्र विद्या प्राप्त थी उस अस्त्र विद्या में और मंत्र में कोई संबंध है

या नहीं । अगर अस्त्र विद्या से मंत्र का कोई संबंध नहीं है तो किस अध्यात्मिक सत्य को मंत्र बता रहे हैं । इन सच्चाइयों की खोज में वे लग गये थे । इस प्रकार की वैदिक तपस्या के लिए देहलालसा और अहम् त्यक्ता गणपति मुनिवर जी ही योग्य व्यक्ति हैं । गणपति मुनिवर ने अनुभव किया कि बाल भडेश्वर में की गई तपस्या के द्वारा जगत कल्याण के लिए कुछ न कुछ कर दिखाने की घड़ी आसन्न हो रही है । चार महीनों के लिए गणपति मुनिवर ने तपस्या की ।

चार महीने की अवधी पूर्ती हुई । कलवराई से गणपति मुनिवर को अपने पिताजी की बीमारी की खबर मिली । गोकर्ण से निकलकर कलुवराई पहुँचने के पहले ही पिता जी का स्वर्गवास हो गया था । अपने पुत्र की बहुमुखी साधना को देख कर तृप्ति के साथ मुनिवर जी के पिता जी ने देहत्याग किया था । पितृ कैकरीयों को अर्थात् क्रिया कर्मों को पूरा कर मुनिवर जी गोकर्ण वापस आ गये । तब नारायण ब्रह्मचारी नामक एक नंबूद्री युवक से गणपति मुनिवर की भेंट हुई । उस को देखते ही मुनिवर ने पूछा : क्या तुम तिरूवण्णामलै से रमणमहर्षि के आदेशानुसार आये हो ? इस प्रश्न को सुनकर वह युवक आश्चर्य चकित हुआ । यह युवक पहले मुनिवर जी का शिष्य बना । इसके बाद मुनिवर से ही इस युवक ने सन्यास को भी ग्रहण किया । मलबार के एक धनी नंबूद्री का पुत्र था यह युवक । सांसारिक भोगों को तजकर मातृ भूमि की सेवा करने के उद्देश्य से भगवान रमण महर्षि के आशीर्वाद पाने के लिए वह पहले तिरूवण्णामलै गया था । भगवान ने चाहा कि यह युवक मंत्र दीक्षा को गणपति मुनिवर से प्राप्त करें । इसलिए इस युवक को रमण महर्षि ने गोकर्ण भेजा था । गुरु से प्राप्त मंत्र का जप जीवन भर कर नारायण ने सिद्धी को प्राप्त किया । रमण गीता की रचना के अंत में मुनिवर जी ने अमृतनाथ (नारायण नंबूद्री का सन्यासाश्रम का नाम) के नाम का उल्लेख किया है ।

XXVIII यज्ञ :

गोकर्ण के पास सह्याद्रि (Sahyadri) पर्वत श्रेणी (Mountain Range) है । उसके छोर में सण्णबेला (Sannabela) नामक एक छोटा गांव है । गोकर्ण की वैदिक मंडली ने इस छोटे से गांव में श्री गणपति मुनिवर जी के नेतृत्व में एक यज्ञ को आयोजित करने का निश्चय किया । यज्ञ संबंधी प्रबंधों को करने के लिए सण्णबेला ग्राम वासी श्री उपेन्द्रोपाध्याय (Upendropadhyaya) ने अपनी सम्मति प्रकट की । सण्णबेला के निवासियों ने मुनिवर जी से सण्णबेला पधार ने, यज्ञ का नेतृत्व करने, अपने तप से उस गांव को पवित्र करने आदि आदि के लिए प्रार्थना की । मुनिवर मान गये । ठंडी हवा, प्रशांत वातावरण, समुद्र का तट और पास वाले घने जंगल ने सण्णबेला में एक तपोभूमी की सृष्टि की थी । कलुवराई के गणपति मुनिवर जी ने गोकर्ण की वैदिक मंडली के साथ वेद का पाठन करते हुए प्रवेश किया । यह दृश्य एक दम अविस्मरणीय है ।

मुनिवर जी की तपस्या और गृह जीवन के लिए आवश्यक प्रबंध सण्णबेला में लोगों ने किया था । पत्नी, संतान, अप्पु और इतर आप्तजन मुनिवर के साथ थे । अप्पु अचानक कामला रोग का शिकार हो गया । सब लोगों को भय और दुख हुआ । उस दिन रात को मुनिवर जी के घर के चबूतरे पर एक ग्रामीण बुढ़िया आकर बैठ गयी । उस ने विशालाक्षी को बुलाया । उसने कहा : अप्पु के रोग निदान के लिए वो देखो सामने जंगल में वो जो लता दिखायी दे रही है उन का उपयोग करो । इतना कहकर वह बुढ़िया वहाँ से चली गयी । जिस लता को उस बुढ़िया ने दिखाया था उस के पत्तों से रस निकाला गया । रस पान करने के बाद अप्पु का पीलिया (Jaundice) रोग कम होने लगा । गणपति मुनिवर ने उस ग्रामीण वृद्धा के बारे में कहा : “ अरे ! यह कोई साधारण ग्रामीण स्त्री नहीं है । वह तो खुद वनदेवता थी । अप्पु को बचाने के लिए वह वहाँ आयी थी । ” मुनिवर जी की ये बातें सुनकर सब अचंभे में पड गये ।

सन् 1913 के अप्रैल महीने में यज्ञ का आरंभ हुआ । यज्ञ करते समय पढ़े जाने वाले वेदमंत्रों के अर्थों को वहाँ जो पंडित इकट्ठे हुए थे उन को समझाते थे । इस प्रकार वे पंडितों का मार्ग दर्शन भी कर रहे थे । पंडितों को मुनिवर ने समझाया कि यज्ञ की जितनी भी विधियाँ हैं या नियम हैं वे सामान्य कर्म नहीं हैं । ये अध्यात्मिक प्रशिक्षण के साथ साथ जगत कल्याण को संपन्न करने के साधन भी हैं । यज्ञ के समाप्त होने के बाद पूरे एक सप्ताह के लिए मुनिवर जी वेदों की अधिदेवता इन्द्राणी का ध्यान करते रहे ।

सण्णबेला से मुनिवर जी सिकंदराबाद के लिए रवाना हुए । प्रिय शिष्य अप्पु और उन के भाई को वहाँ नौकरी मिली थी । मार्ग मध्य के कुमटा (Kumata) नामक गांव में रुककर उस गांव के संस्कृत पाठशाला देखने गये । विद्यार्थियों को मुनिवर जी ने मंत्र दीक्षा भी दी । कुमटा निवासियों को रमण महर्षि जी के जीवन और उन के उपदेशों से अवगत कराया । उस गांव के दो विद्यार्थी - देवेन्द्र सुब्रह्मण्य विश्वामित्र और सुन्दरराव पंडित - उन के प्रिय शिष्य बन गये ।

सिकंदराबाद शहर में रमण महर्षि के अनेक भक्त रहते थे । रमण महर्षि जी के जीवन और उन की साधनाओं के बारे में मुनिवर जी ने कई भाषण दिये । अनेकों को मंत्र दीक्षा भी दी । अपने अनुरागियों (Fans) के आग्रह के कारण दो अवधान कार्यक्रमों में उन्होंने भाग लिया । अवधान क्रिया जैसे साहित्यिक कार्यक्रमों में भाग लेने की उन की इच्छा नहीं थी । उन का मत है : भगवान के साक्षात्कार का साहित्य एक साधन मात्र है । परमात्मा के वैभवों का गुणगान करते हुए उन्होंने काव्य लिखे । उन काव्यों की रचना के पीछे अपने पांडित्य को प्रदर्शित करने की भावना लेश मात्र भी नहीं थी ।

आंध्र के सुप्रसिद्ध अवधानी द्वय - तिरूपति शास्त्री (Tirupati Shastri) और वेन्कट शास्त्री (Venkata Shastri) शतावधानी बन कर आये थे । दोनों ने उपस्थितों को ललकारते हुए कहा : अगर आप

में से कोई आशुकविता में हम से होड लेना चाहे तो सामने आये । उनको पहले मालूम नहीं था कि सभा भवन में काव्य कंठ गणपति मुनिवर जी भी बैठे हुए हैं । जैसे ही उनको पता चला तो वे दोनों उस होड को तुरंत बंद कर मुनिवर जी से क्षमा याचना करने लगे । मुनिवर जी ने उन दोनों की विद्वत्ता की प्रशंसा की और अवधान को जारी करने के लिए अनुमति भी दी ।

सिद्धी अथवा चमत्कारों के प्रदर्शन से मुनिवर जी को परहेज था । सिद्धियों के द्वारा सांसारिक सुखों को भोगना उन को अच्छा नहीं लगता था । फिर भी एक दो ऐसे संदर्भ भी आये कि मुनिवर जी को अपनी सिद्धियों के बल पर रोग से पीडित दो शिशुओं को रोग मुक्त करना पडा ।

गणपति मुनिवर जी के जीवन का एक ही लक्ष्य था - रमण महर्षि जी के जीवन और उपदेशों का प्रचार । मुनिवर जी का विश्वास था कि अगर वे अपने जीवन में कुछ कर पाये हैं तो वह गुरू रमण महर्षि की कृपा के कारण ही ।

वे भी मानते थे कि रमण महर्षि जी उन की वाणी के द्वारा बोलते हैं । सन् 1913 के अंतिम चरण में गणपति मुनिवर जी पत्नी समेत रमण महर्षिजी के दर्शन हेतु तिरूवण्णामलै आये । मुनिवर जी ने उन सब कार्यों का विवरण रमण महर्षि को दिया जिन्हे वे बाल भंडेश्वर गोकर्ण, सण्णबेला में कर चुके हैं । अनेक अध्यात्मिक विषयों के बारे में रमण महर्षि जी से उन्होंने चर्चा की । इस चर्चा सार को अपनी कृति रमणगीता में उन्होंने मिलाया है ।

शास्त्र चर्चा और विमर्श में काल यापन करने से कोई आत्म दर्शन कर नहीं सकता । आत्म साक्षात्कार के लिए अदम्य इच्छा की आवश्यकता होती है । आत्म ध्यान का प्रयत्न ही इस साधना का एकैक (Only) मार्ग है । आत्म ध्यान करने वाला ही वास्तविक ज्ञानी है । आत्म साक्षात्कार के पथ पर चलने वालों की सभी आशाये पूर्ण होती हैं । पर जो आत्म साक्षात्कार को पा चुके हैं उन के लिए आशाये गौण हैं ।

XXIX उत्तर भारत की यात्रा :

उत्तर भारत की यात्रा करने की इच्छा गणपति मुनिवर जी की पत्नी विशालाक्षी को कई सालों से थी । उन की उस इच्छा की पूर्ति के लिए गणपति मुनिवरजी पत्नी समेत उत्तर भारत की यात्रा के लिए निकले । सब से पहले वे भुवनेश्वर गये वहाँ चार महीनों के लिए दोनों ने तपस्या की । विशालाक्षी जी के मन में एक निराशा थी । वे सोचती थी कि उनकी तपस्या का कोई फल नहीं मिल रहा है । मुनिवर जी ने उन को समझाया । उन्होंने कहा माता भुवनेश्वरी की कृपा से तुम शिष्यों के अध्यात्मिक उन्नति में सहायता पहुँचा रही हो । पाक विद्या में निपुणता तो देवी की कृपा से तुम्हें मिली है । डरो मत । भरोसा रखो । तुम्हारी साधना के फल अवश्य तुम्हें मिलेंगे । भुवनेश्वर से दोनों मंदास (Mandas) आये । वहाँ के राजा का अतिथि बन लगभग एक वर्ष के लिए वही रह गये । अपने समय को दोनों ने साधना में ही व्यतीत किया ।

उन्ही दिनों में रमणाश्रम से रमण महर्षि का भक्त रामनाथ ब्रह्मचारी नामधारी मंदास आये । वे एक कुतूहलकारी समाचार को अपने साथ लाये थे । रमण महर्षि का एक भक्त जगदीश शास्त्री रमण के उपदेशों के बारे में एक श्लोक की रचना करना चाहते थे । 'हृदय कुहर मध्ये' मात्र लिख पाये । इन शब्दों के बाद श्लोक आगे नहीं बढ़ा । श्लोक को पूरा करने के लिए जगदीश शास्त्री ने बहुत प्रयत्न किया । पर लेखिनी आगे नहीं बढ़ी । इसे रमण महर्षि जी देख रहे थे । तुरंत कागज और कलम को लेकर उस श्लोक को इस तरह पूरा किया :

हृदय कुहर मध्ये केवलम् ब्रह्म मात्रम्
अहमहमिति साक्षात् आत्म रूपेण भाति ।
हृदिविश मनसास्वम् चिन्वतामज्जतावम्
पवन चलन रोधात् आत्म निष्ठो भवत्वम्

अर्थात् हृदयांतराल में परमात्मा, 'आत्मा' 'मैं' कहलाते हुए प्रज्वलित हो रहा है । उसे आत्मा को ढूँढते हुए अथवा श्वास

का नियंत्रण करते हुए अथवा हृदय की गहराई में प्रवेश करते हुए आत्मा में स्थापित कर लो । रमण महर्षि ने आत्म दर्शन के तीन मार्गों को बहुत सुन्दरता से दिखाया था । इस सुन्दरता की प्रशंसा गणपति मुनिवर जीने की और अपनी कृतज्ञताओं को ब्रह्मचारी जी के द्वारा प्रकट भी किया । गणपति मुनिवर जी द्वारा रचित 'रमण गीता' के दूसरे अध्याय में यह बात मिलायी गयी ।

गणपति दंपति काशी, गया, प्रयाग और अयोध्या की यात्रा को समाप्त कर वृन्दावन पहुँचे । तब वहाँ संस्कृत के विद्वानों का एक सम्मेलन दर्भंगा के राजा की अध्यक्षता में चल रहा था । यह सोचते हुए कि उन के मित्रवर पंडित शिवकुमार इस सम्मेलन में भाग लेने आये होंगे, उन से मिलने सभा के मंडप द्वार तक पहुँचे । वहाँ दरबान ने मुनिवर जी को रोकते हुए कहा कि प्रवेश मात्र पंडितों के लिये है । मुनिवर जी ने उन से पूछा : भई, यह तुम ने कैसे निर्णय किया कि मैं पंडित नहीं हूँ । दरबान ने झट जवाब दिया : आप के सिर पर साफा (Turban) जो नहीं है । दूरसे पंडित शिवकुमार जी सब को देख रहे थे । वे मंच पर से उतर आ मुनिवर जी का स्वागत कर सम्मेलन में ले गये और महाराजा से परिचय करवाया । उस दिन के सम्मेलन की चर्चा का विषय कन्या के विवाह की उपयुक्त आयु थी । अनेकों पंडितों के भाषण के बाद महाराज ने गणपति मुनिवर जी का परिचय देते हुए चर्चा के विषय के बारे में अपने मत को प्रस्तुत करने के लिए कहा । मुनिवर जी ने अपने विचारों को इस प्रकार प्रकट किया : हिन्दू समाज में विवाह एक धार्मिक नियम है । मुसलमानों के आक्रमण के कारण हिन्दुओं के विवाह पद्धति में कुछ परिवर्तन आये हैं । पर बाल्य विवाहों के लिए हिन्दू धर्म में शास्त्राधार कहीं भी नहीं है । अतः कन्या का विवाह उस के प्रौढावस्था में पहुँचने के बाद ही होना चाहिए । यही उचित है । मुनिवर का प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हो गया ।

चर्चा के बाद सम्मेलन से संबंधित साहित्य सभा शुरू हुई ।

इस सभा के अध्यक्ष महा महोपाध्याय हरि प्रसाद शास्त्री जी थे । उन के बदले गणपति मुनिवर को ही अध्यक्षसन ग्रहण करना पडा । साहित्य संबंधी मुनिवर जी के भाषण से सदस्य बहुत प्रभावित हुए थे ।

नवद्वीप क्षेत्र छोडने के बाद जिन जिन अनुभवों का अनुभव वे कर चुके हैं उन का विवरण एक एक करके मुनिवर जी ने मित्रवर पंडित शिवकुमार जी को दिया । पंडित शिव कुमार जी विदा लेकर अपनी उत्तर भारत की यात्रा को समाप्त कर सन् 1916 के मार्च महीने में मद्रास वापस आ गये ।

XXX महेन्द्रगिरि में तपस्या :

वेदाध्ययन, संशोधन, जप तप आदि में निरंतर डूबे रहने के कारण परिवार संबंधी कार्यों को कुछ समय के लिए भूल गये थे । पर उन के नातेदारों ने उनकी अष्ट वर्षीय कन्या वज्रेश्वरी का विवाह गल्लडी (Galladi) गांव के निवासी श्री गंटी चिरंजीवि (Ganti Chiranjivi) के पुत्र सोमयाजुलु (Somayajulu) से करने के लिए निश्चय किया था । विशालाक्षी जी को भी उन लोगों ने मनाया था । अब वे गणपति मुनिवर की अनुमति लेने मद्रास आये । गणपति मुनिवर जी बाल्य विवाह के पक्ष में नहीं थे । पर पत्नी और नातेदारों की इच्छा को न ठुकराते हुए विवाह के लिए अनुमति दे दी । सन् 1916 के में (May) महीने में विवाह संपन्न हुआ । विवाह के बाद युव दंपति रमण महर्षि जी के आशीर्वाद लेने के लिए तिरुवण्णामलै आये ।

तिरुवण्णामलै आने के पहले चंद दिनों के लिए मुनिवर को वेल्लूर में ठहरना पडा । उस समय वहाँ श्री वी.यन. शर्माजी की अध्यक्षता में एक आन्ध्र सम्मेलन चल रहा था ।

सम्मेलन के ही एक अंग के रूप में वहाँ सनातन धर्म सभा का आयोजन हुआ था । उस सभा में गणपति मुनिवर जी ने

भाग लिया । अपने भाषण में उन्होंने सनातन धर्म के अर्थ को समझाया । धर्म और संप्रदाय में स्थित भेदों का विवरण भी उन्होंने दिया । उन्होंने आगे इस प्रकार कहा : “ धर्म निरंतर है । पर संप्रदाय बदलते समय के अनुसार बदलते रहते हैं । धर्म अडिग है । जब संप्रदायों को बदलते हैं तब वाद विवाद होते हैं । इस की आवश्यकता भी है । वेद शास्त्र संप्रदाय नहीं है । चिर रहने वाले वेद धर्म और समय के अनुसार बदलने वाले संप्रदाय में संबंध को जोड़ना सही कार्य नहीं है । ” मुनिवर जी के इन विचारों का खंडन चंद विद्वानों ने किया । पर सभाध्यक्ष मुनिवर से सहमत थे । मुनिवर जी के विचार वास्तव में अत्यंत प्रगतिशील विचार थे । पर कुछ परंपरावादी पंडितों ने मुनिवर जी पर आरोप लगाया कि वे सनातन धर्म के विरोधी हैं । पर गणपति मुनिवर जी ने इन आरोपों पर ध्यान नहीं दिया ।

मुनिवर फिर एक बार मंदास पहुँच गये । वहाँ वे अपनी साधना में मग्न रहे । एक दिन उन के शिष्य दैवरत अपने गुरु से मिलने आये । राजा ने दैवरत जी का स्वागत किया । गोकर्ण और मंदास में काफी साम्य है । दोनों समुद्र तरवर्ती प्रदेश हैं । दोनों परशुराम क्षेत्र हैं । दोनों क्षेत्रों में गोकर्णेश्वर जी के मंदिर हैं । इन साम्यों के कारण ही दैवरत और मंदास के राजा एक दूसरे के समीप आ गये । उन दोनों को ये साम्य एक करने में सफल हुए ।

मंदास के पास महेन्द्रगिरि है । यह घने जंगल से घिरा हुआ प्रांत है । शिवरात्री के उपलक्ष्य में गोकर्णेश्वर की जो पूजा होती है उस पूजा को देखने के लिए हजारों की संख्या में भक्तजन वहाँ आते हैं । बाकी दिनों में महेन्द्रगिरि एक निर्जन प्रांत है । इसी प्रांत में तपस्या करने के लिए गुरु गणपति मुनिवर और शिष्य दैवरत वहीं बैठ गये । जंगली जानवरों से इन को बचाने के लिए राजा ने सुरक्षा के प्रबंधों को किया ।

गोकर्ण के गोकर्णेश्वर की मूर्ति गाय के कान समान होती है । महेन्द्रगिरि के महादेव की मूर्ति के हृदय पर गाय का कान है । इस मूर्ति को दहर गोकर्णेश्वर का नाम देकर गणपति मुनिवर ने उस मूर्ति की स्तुति में छः श्लोकों की रचना की । गणपति मुनिवर जी का विचार था कि अगर गोकर्ण के गोकर्णेश्वर साकार ब्रह्म है तो दहर गोकर्णेश्वर निराकार ब्रह्म है । दहर गोकर्णेश्वर जी के मंदिर के पास एक विष्णु मंदिर है । इस विष्णु मंदिर को गणपति मुनिवर जी परशुराम का पूजा स्थल मानते थे ।

इन मंदिरों के बीच एक मंडप था । वहीं पर बैठ कर गुरु शिष्य तपस्या करने लग गये थे । महेन्द्रगिरि देखने में ऐसा दिखायी देता है मानो वह सोये हुए गाय का ऐंठा हुआ कान है । हमारे पुरखों ने इस गिरि क्षेत्र का नाम गोकर्ण क्षेत्र रखा है । यह अति उचित और उपयुक्त नाम है । हमारे ऋषियों की कल्पना अति ऊँची है । इस कलात्मक प्रदेश को उन लोगों ने तपस्या के लिए चुना था । योग्य काम के लिए योग्य स्थल को चुनने की जो बुद्धि शिष्य के पास थी, उस की गणपति मुनिवर ने भूरि भूरि प्रशंसा की । गुरु शिष्यों ने तपस्या को इक्कीस दिनों के लिए जारी रखा । बीसवें दिन की बात है । मुनिवर जी अभी होश में थे । उन्होंने एक जटाधारी पुरुष को अपने सामने खड़ा पाया । इस पुरुष का दर्शन वे पड़ैवीडु में एक बार कर चुके थे । उन के मुख पर एक अवर्णनीय आभा थी । तेज मानो उन के मुँह से झर रहा था । उस चका-चौध करने वाली कांति को मुनिवर की आँखे सह नहीं पायी । उन्होंने अपनी आँखों को मूंद लिया । उन को लगा मानो उन की सुशुम्ना नाडी में बिजली दौड़ गयी हो । आँखे खुली तो सब गायब हो गया । दूसरे दिन तपस्या को समाप्त कर महेन्द्रगिरि से दोनों मंदास लौट आये ।

XXXI फिर अरूणाचल की ओर :

सन् 1917 के जून महीने तक अपनी पत्नी, पुत्री और शिष्य दैवरत के साथ मुनिवर मंदास से तिरूवण्णामलै आये । मार्ग मध्य में पडने वाले विजयवाडा और मद्रास में उतर कर शिष्यों के घरों में चंद दिनों के लिए ठहरे । अरूणाचल के ऊपर रहने वाले आम की गुफा में मुनिवर जी रहना चाहते थे । पर वह वास योग्य नहीं था । उसका जीर्णोद्धार होना चाहिए था । कुछ दिनों के लिए शिष्या यज्ञमाल के यहाँ अतिथियों के रूप में ठहरे थे । बाद में वे गुफा आ पहुँचे । मुनिवर जी इस आम वृक्ष गुफा को बहुत चाहते थे । इस चाह के पीछे एक कारण था । यह गुफा रमणजी वास करने वाले स्कंदाश्रम के एक दम पास था । रमण महर्षि ब्रह्म-जीव-जगत् के बारे उपदेश दिया करते थे । इन उपदेशों से संबंधित ग्रंथ 'रमणगीता' की रचना मुनिवर जी को करनी थी । इसलिए उनके सामीप्य की आवश्यकता मुनिवर जी को थी ।

गर्मी के मौसम के कारण रोज पहाड चढ़कर स्कंदाश्रम पहुँचने में मुनिवर जी को दिक्कत थी । फिर भी रमणगीता की रचना अबाध गति से हो रही थी । रमणगीता के प्रथम अध्याय में मुनिवर जी ने छः सवाल मिलाये । दूसरे अध्याय में रमण महर्षि के हृदय कुहर मध्ये श्लोक का अर्थ मिलाया गया । दैवरत जी के प्रश्न रमण महर्षि के उत्तर तीसरे अध्याय का सार है । रमण महर्षि जी द्वारा दिया गया ज्ञान और विभूति का विवरण चौथे अध्याय में देखा जा सकता है ।

गर्मी की तीव्रता कम हुई । मुनिवर जी के शिष्यों ने सोचा कि अब मुनिवर जी और उन की पत्नी के रहने के लिए विरूपाक्ष गुफा ही अधिक उचित है । इस संबंध में वे प्रयत्न भी करने लगे थे । पलनि स्वामी नामक व्यक्ति उस गुफा के संरक्षक थे।

गणपति मुनिवर जी का, पत्नी समेत आकर उस गुफा में रहना उसे पसंद नहीं था । उस ने यह भी कहा उन दोनों के आकर बसने की कोई गुंजाइश नहीं । रमण महर्षि को पत्नि स्वामी की ये बातें अच्छी नहीं लगी । पत्नि स्वामी जानते नहीं थे कि गणपति मुनिवर वानप्रस्ताश्रम के नियमों का पालन कर रहे हैं । रमणमहर्षि की इच्छा के अनुसार मुनिवर जी अपने परिवार के साथ विरूपाक्ष गुफा में रहने लग गये । मुनिवर जी रमणगीता रचना कार्य को आगे बढ़ाते रहे । चिल चिलाते हुए धूप को कम करने और वर्षा लाने के लिए मुनिवर जी ने इन्द्र से प्रार्थना की और ऋग्वेद के सूक्तों को पढ़ने लगे । आश्चर्य, उस दिन रात्रि को बिजली के गडगडाहट के साथ मूसलधार वर्षा हुई । वर्षा के कारण वातावरण ठंडा पड़ गया ।

XXXII काव्य और भाषण :

“अध्यात्मिक साधना के द्वारा सत्यान्वेषण में लगे प्रामाणिक साधक अपने स्वानुभव के बल पर कभी मार्ग दर्शन नहीं कर सकते । इस विषय में महापुरुषों की अति आवश्यकता होती है । वे बहुत कुछ सहायता कर सकते हैं । पर ऐसे महापुरुषों को पाना एक दम दुर्लभ है । ऐसे अनेक पंडित हमें मिलेंगे जो यही कहते हैं कि शास्त्रों का ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है । साधना जैसे कठिन मार्गों पर वे चलना नहीं चाहते । ऐसे मार्गों की आवश्यकता भी उनको नहीं है । “ निर्गुण ब्रह्म की उपासना करने मात्र से ब्रह्म साक्षात्कार हो सकता है ” कहने वाले दार्शनिक भी हम को कई मिल जायेंगे । सांसारिक भोग लालसाओं को त्यागे बिना ही, कुछ लोगों का कहना है हम अध्यात्मिक सत्य को देख सकते हैं । शास्त्र ग्रंथों की कई टीकायें या भाष्य हमें देखने को मिलते हैं । अपनी विद्वत्ता और वाक्शक्ति को प्रदर्शित करने के लिए ये ग्रंथ काम आते हैं । भगवद् गीता जैसा एक ग्रंथ विद्वानों को

काम, भाषण करने वालों को आवश्यक विषय और धर्मबाह्य कार्यों को करने वाले राजनीतिज्ञों के लिए रक्षा कवच प्रदान करता है कहना झूठी बात नहीं है ।” रमण महर्षि जानते थे कि उक्त रीति से सोचना एक दम व्यर्थ है । उपर्युक्त शुष्क चर्चा को छोड़कर किसी भी एक उपासना या साधना को अपनाने के लिए रमण महर्षि साधकों को उपदेश देते थे । मंत्र जप तप आदि का अभ्यास किये बिना रमण महर्षि कहते थे, कोई भी साधक आगे नहीं बढ़ सकता । जो इन अभ्यासों में निरंतर रत रहता है उसको मानसिक शांति मिल सकती है और लक्ष्य की ओर वह जा सकता है । अध्यात्मिक साधनाओं को मंत्र शास्त्र में विद्या कहते हैं । इन विद्याओं के बारे में स्पष्ट बताने वाले कई भाष्य हमें मिलते हैं । इन बृहत् सूत्रों को संक्षिप्त कर और सरल सूत्रों की रचना कर इन विद्याओं को आचारण में रखने वाले बहुतों की सहायता गणपति मुनिवर ने की है । ये सूत्र मार्ग दर्शन करने वाले दीप के बराबर हैं । रमणगीता की रचना जब हो रही थी तभी इन सूत्रों की रचना भी गणपति मुनिवर ने की थी । तिरूवण्णामलै के रामानंद निलयम के वार्षिकोत्सव में भाग लेकर मंत्र शास्त्र में बताये गये दस महाविद्याओं के बारे में मुनिवर ने भाषण दिया था । आखिरी रोज की सभा में मुनिवर जी का सम्मान करने के लिए शेषाद्रि स्वामी जी जो तिरूवण्णामलै के नामी साधक हैं : स्वयं आगे बढे थे । उन्होंने मुनिवर जी की भरपूर प्रशंसा की थी ।

इस बीच रमणगीता की रचना भी संपन्न हुई । तीन सौ से थोड़े कम श्लोकोंवाले इस महाकृति में रमण महर्षि की स्तुति है और साथ साथ उन के उपदेशों का संकलन भी हुआ है । अध्यात्म संबंधी रमण महर्षि के अनुभव भी इस में वर्णित हैं । भगवत् गीता के मार्ग पर चल कर इस काव्य की रचना गणपति मुनिवर ने की थी । इस काव्य की प्रधान वस्तु आत्म चिंतन है । रमण

महर्षि की दृष्टि में एक पुरुषार्थ को मानव को, पाना ही है । वह पुरुषार्थ है आत्म दर्शन । जो आत्म दर्शन कर चुका है उस के लिए अन्य पुरुषार्थों की कोई आवश्यकता नहीं है । रमणगीता किसी एक नये धर्म अथवा तत्व का प्रचार नहीं करता । आत्म साक्षात्कार कर लेना, आत्मा में लीन होना, शांति के साथ रहना जैसी बातें इस महाकृति में हैं ।

कपालि शास्त्री गणपति मुनिवर का एक प्रमुख शिष्य हैं । इस गीता का उन्होंने ' प्रकाश ' नाम से एक भाष्य लिखा है । अध्यात्मिक संबंधी चंद कठिन बातों को समझाया है । इतना ही नहीं जो बातें अस्पष्ट हैं उन्हें स्पष्ट बनाया है । सामान्य लोगों के लिए रमण गीता को सुगम और सुलभ बनाया है । रमणगीता का अधिकांश भाग प्रश्न उत्तर के रूप में ही है । रमणजी के सामने साधक जिन प्रश्नों को रखते थे उन का उत्तर वे दे दिया करते थे और उन के संदेहों को दूर करते थे । आत्म साक्षात्कार के लिए किये जाने वाले साधनाओं का विवरण इस प्रकार है : " मैं कौन हूँ ? " सोचना ही साधना का उत्तम मार्ग है । कहा भी गया है कि स्वविमर्शनम् परं पुण्यं, पावनानां हि पावनम् । आत्म चिंतन कैसे हृदग्रंथियों को तोड़ सकता है, साधना के द्वारा सिद्धियाँ कैसे मिल सकती हैं, शक्ति और शक्त का क्या संबंध है, आध्यात्मिक जीवन में स्त्रियों का योगदान, भक्ति, ज्ञान इत्यादि के बारे में रमण महर्षि के द्वारा दिये गये उत्तर इस में हैं । रमण महर्षि की स्तुति में लिखा गया - ' नीलारविन्द सुहृदा -श्लोक भी रमणगीता में है । इस श्लोक को ध्यान श्लोक के रूप में उपयोग करने के लिए भगवान रमण ने अनुमति दी थी । रमण गीता की रचना कर प्राचीन ऋषि मुनियों की श्रेणी में अपने लिए एक स्थान को मुनिवर ने बना लिया है ।

रमणगीता की रचना के बाद गणपति मुनिवर जी एक एकांत स्थान पर जाकर तपस्या करना चाहते थे । तप करने के लिए

पत्नी विशालाक्षी और शिष्य दैवरत -दोनों ने बढावा दिया । रमण महर्षि जी के सामने बैठकर तप करने के लिए शिष्य दैवरत को एक असामान्य शक्ति की आवश्यकता थी । इस लिए तीनों मिलकर वेल्लूर के पास वाले पडैवीडू को आ गये । सन् 1917 के अक्टोबर (अक्तूबर) महीने से सन 1918 के फरवरी महीने तक वे पडैवीडू में रहकर तपस्या करने लगे ।

कलुवराइ के पास वाले सुंकि (Sunki) गांव के विश्वनाथ राम सोमयाजुलु जी (Viswanath Somayajulu) गणपति मुनिवर से मिलने पडैवीडू आये । वे अपनी सहोदरी राजेश्वरी के लिए गणपति मुनिवर जी के पुत्र महादेव शास्त्री का हाथ मांगने आये थे । सन 1918 के जून महीने के पंद्रह तारीख को विवाह संपन्न हुआ । विवाह के बाद गणपति मुनिवर जी तिरूवण्णामलै वापस आ गये । अब तक रमण महर्षि के भाई नाग सुन्दरम और नारायण ब्रह्मचारी सन्यासाश्रम को स्वीकार कर चुके थे । अब वे निरंजनानंद और अमृतनाथ के नाम से जाने जाने लगे ।

पुत्र के विवाह के बाद गणपति मुनिवर जी को लगा कि वे अपने कौटिम्बिक उत्तरदायित्वों से मुक्त हो गये हैं । अपनी पैतृक संपत्ति को वे भाई और पुत्र में बांट कर लौकिक व्यवहारों से भी छुटकारा पाने में सफल हुए ।

गणपति मुनिवर बटवाडे का काम समाप्त कर कलुवराइ के पास रहने वाले सूर्यक्षेत्र अरसवल्ली (Arasavalli) चले आये । वहाँ सूर्य भगवान का ध्यान कर सूर्य गीतम् (Surya Geetham) नामक एक स्तोत्र काव्य की रचना की । इस के बाद सिकंदराबाद और वहाँ से कलुवराइ गये । उमा सहस्रम काव्य का संशोधन कार्य चल रहा था । कलुवराइ के पास वाले गांव में (कृष्णरायपुरम) एक पंडित सभा आयोजित हुई थी । गणपति मुनिवर उस में भाग ले वेदों में बतायी गई सामाजिक नीति के बारे में समझाया । सदाचार बोधिनि (Sadachar Bodhini) में इस बात की चर्चा है ।

सिकंदराबाद में ही उन का स्वास्थ्य बिगड़ गया था । भयानक सर दर्द उन को सताने लग गया था । विशालाक्षी जी का स्वास्थ्य भी इतना अच्छा नहीं था । तपस्या जैसी साधना के कारण उन के देह की अंदरूनी शक्ति प्रकट होकर शरीर के कश्मल का दहन किया करती थी । इस शक्ति के कारण रूद्र और ब्रह्म ग्रंथियाँ कट गयी थी । इन परिस्थितियों में कपालि, सुधन्व जैसे शिष्यों ने आग्रह किया कि वे तिरूवण्णामलै आ जाय । इस प्रेम भरे आग्रह को मुनिवर ठुकरा नहीं पाये । उन्होंने तिरूवण्णामलै आने के लिए उन से वादा किया । मुनिवर जी को अनुभव होने लगा कि साधना का फल सिद्धि मिलने की घड़ी अब आ गयी है । साधना का फल सिद्धि के मार्ग के सब विघ्नों को दूर करने के लिए विघ्न विनायक की प्रार्थना करते हुए गणपति मुनिवर ने चार श्लोकों की रचना की । पर किसी न किसी कारण से सिकंदराबाद छोड़ कर तिरूवण्णामलै आने में देरी हो रही थी ।

XXXIII सिद्धि :

शिष्यों के मन में इस बात का भय घर कर लेने लगा कि उन के गुरुजी अरूणाचल से दूर हैं । वे नहीं चाहते थे कि गुरुजी के आने के बाद आवास की समस्या उठ खड़ी हो । इस लिए आम्र वृक्षवाली गुफा को ही उन्होंने मिल कर ठीक ठाक किया । सिकंदराबाद से निकल कर गणपति मुनिवर जी मद्रास पहुँचे । मद्रास में सुधन्व नामक एक शिष्य था । ये शिष्य अपने समय के काफी सुप्रसिद्ध वकील थे । गणपति मुनिवर जी उन्हीं के यहाँ ठहरे । अध्यात्मिक प्रशिक्षण के इच्छुक जो भी उन से मिलने आते थे उन को गणपति मुनिवर जी उपदेश दिया करते थे । इन उपदेशों को राजयोगसार (Rajayogasar) नामक ग्रंथ में वे लिपि बद्ध कर चुके हैं ।

अरूणाचल पहुँचकर आम्रवृक्ष वाली गुफा में वे रहने लगे । वहाँ उन्होंने सातवीं बार उमासहस्रम का संशोधन किया । एक दिन मुनिवरजी पत्नी समेत तपस्या में लीन बैठे थे । अचानक आकाश में बिजली कौंध उठी । इंद्र की शक्ति, उन को लगा, इन्द्राणि उन को दिखाई दे रही है । इन्द्राणि की शक्ति का वर्णन करते हुए चार सप्ताहों में सात सौ श्लोकों की रचना गणपति मुनिवर ने की । सात सौ श्लोकों को पच्चीस श्लोकों वाले अट्ठाईस स्तबकों में विभाजित किया । हर एक स्तबक में पहले इन्द्राणि के सौंदर्य और उस के बाद अपनी मातृभूमि के उद्धार के लिए इंद्राणि के अनुग्रह की प्रार्थना करते हुए इन्द्राणि सप्तशति काव्य की रचना मुनिवर जी ने की ।

एक दिन रात्री के समय अचानक गणपति मुनिवर ने असहनीय सर दर्द का अनुभव किया । उन को लगा मानों हजारों कीड़े-मकोड़े उन के सिर को खाये जा रहे हैं । उन्होंने अनुभव किया मानों कोई कुल्हाड़ी लेकर उन के सिर को चीर रहा है । इस पीड़ा के कारण मुनिवर जी न खा सके और न ही पी सके । वे आराम भी नहीं कर पाये । कोंडय्या(Kondaiah) नामक एक शिष्य अपने गुरुजी की पीड़ा को देखकर बहुत दुखी हुआ और उनके पास ही रह गया । इस समय अचानक खोपड़ी के फटने की आवाज आयी । आकर उसने देखा कि खोपड़ी के छिद्र से धुआँ निकल रही है । मुनिवर जी की पत्नी और पुत्र मूक साक्षी बन कर वहीं खड़े थे । मुनिवर के इस अनुभव को 'कपाल भेद' कहते हैं । आकाश में व्याप्त शक्ति ब्रह्म रंघ्र के द्वारा देह में प्रवेश कर मूलाधार तक फैल जाती है । इस क्रिया के कारण शारीरिक बंधन और पीड़ा से गणपति मुनिवर जी मुक्त हुए थे । उनके मुख पर एक अकथनीय शांति का ताण्डव नृत्य हो रहा था । तैत्तरीय उपनिषद् में यह बात - व्यापूह्य शीर्ष कपाल अर्थात् खोपड़ी का फटना और ब्रह्मरंघ्र के द्वारा शक्ति का प्रवेश - उल्लिखित

है । यह बात आज मुनिवर जी के स्वानुभव में आयी । उमा सहस्रम और ' इन्द्राणि सप्तशति ' में गणपति मुनिवर जी ने लिखा था कि कैसे जगदंबा अपने भक्त के शरीर को अपनी लीला के लिए उपयोग में लाती है । मुनिवर जी के उस वर्णन में और आज के इस स्वानुभव में हम साम्य को देख सकते हैं ।

XXXIV रमणाश्रम की स्थापना :

अलगम्माल (Azhagammal) नामक एक साधारण गृहिणी की दुख भरी कहानी का यहाँ उल्लेख करने की आवश्यकता है । अलगम्माल के पति और कुटुम्ब के मुखिया सुन्दरम अय्यर (Sundaram Iyyar) का निधन हो गया था । उन के निधन के कारण वे अधार हीन अनाथ बन गये थे । उनका दूसरा पुत्र वेन्कट रामन (आगे ये ही भगवान रमण महर्षि के नाम से प्रसिद्ध हुए) विद्यार्थी दशा में ही घर छोड़ कर भाग गया था । तिरूवण्णामलै पहुँच कर वह लडका सन्यासियों का सा जीवन बिता रहा था । उन्होंने (दूसरे लडके ने) घर वापस लौटने का नाम नहीं लिया । इस बीच परिवार के ज्येष्ठ पुत्र नागस्वामी जी का भी स्वर्गवास हो गया । बाल्यावस्था में रहनेवाले पुत्र (तृतीय) नाग सुन्दरम् और पुत्री अलुमेलु (Alumelu) का पालन पोषण करना अळगम्माल के लिए एक प्रयास युक्त कार्य बन गया था । इन कठिनाइयों के साथ साथ अळगम्माल को ऋण का भार भी ढोना पड़ा था । जब कोई दूसरा चारा नहीं रहा तो तब वे अपने देवर नेल्लियप्प अय्यर (Nelliappa Ayyar) के यहाँ आकर रहने लग गयी । अपने संतान को बड़ा कर उन के विवाहों को भी अळगम्माल ने पूरा किया । उन्होंने सोचा चलो अब से मैं चैन से जीवन बिता सकूँगी । पर दुर्भाग्य ने उनका पीछा नहीं छोड़ा । सन् 1916 में पुत्र नागसुन्दरम् की पत्नी ने एक लडके को जन्म देकर शिव लोक वासी हो गयी । फिर से अळगम्माल को शिशु के पालन पोषण और कुटुम्ब

की देखभाल करने के भार को संभलना पड़ा । पर अपने इस भार को वे बहुत दिन ढो नहीं पायी । तिरूवण्णामलै में रहने वाले अपने दूसरे पुत्र भगवान रमण महर्षि के साथ रहकर अपने जीवन के बाकी दिनों को व्यतीत करने के उद्देश्य से अपने तृतीय पुत्र नागसुन्दरम के साथ आयीं । अपने पुत्र रमण महर्षि के विरूपाक्ष गुफा में ही वे भी रहने लगी थी । रमण महर्षि के सामीप्य को छोड़ कर वे कुछ नहीं चाहती थी । विरूपाक्ष गुफा का जीवन एक प्रकार से उन को आवश्यक मानसिक शांति दे रहा था । इस बीच उन का तीसरा पुत्र नागसुन्दरम भी सन्यासी बन मधुकरी भिक्षा लाया करता था । अळगम्माल भोजन बनाती थी और गुफा में आने वाले अतिथियों का सत्कार किया करती थी । सन् 1920 के आस पास उन का स्वास्थ्य बिगड़ गया । सन् 1922 के मई महीने के 19वीं के तारीख को उन का देहावसान हो गया । जब अळगम्मल जी अपनी मृत्यु शय्या पर थी तब भगवान रमण महर्षि उन्हीं के पास बैठे थे । उन के हृदय पर हाथ रख कर उन्होंने उन के जन्म जन्मांतरों के संस्कार और ज्ञान की प्रशंसा करते हुए उन को मुक्ति प्रदान किया । रमण महर्षि की मातृ सेवा के लिए यह एक उदाहरण मात्र है ।

दूसरे दिन अलंगम्माल के पार्थिव शरीर को अरूणाचल के दक्षिण भाग में रहने वाले पलि (Pali) तीर्थ में समाधि कर समाधि पर शिवलिंग की स्थापना लोगों ने की । उस लिंग को गणपति मुनिवर ने मातृभूतेश्वर लिंग कहा । समाधि के पास जल की सुविधा भी मिल गयी थी ।

मातृभूतेश्वर मंदिर के चारों ओर वाला प्रांत एक जंगल के समान था । रमण महर्षि जी के भाई स्वामी निरंजनानंद और उन के सहायक दंडपाणि (Dandapani) दोनों ने मिल कर उस प्रांत को साफ कर वास योग्य बनाया । अरूणाचल पर के स्कंदाश्रम में रहने वाले रमण महर्षि रोज नीचे उतर आते थे और मातृ भूतेश्वर

क्षेत्र की जो सफाई का काम हो रहा था उस को बढ़ावा दिया करते थे । सन् 1923 के जनवरी तीन तारीख को रमण जयति का उत्सव मातृभूतेश्वर मंदिर में ही आयोजित हुआ था । रमणाश्रम की स्थापना के लिए इस उत्सव आयोजन ने श्री गणेश का काम किया । उस दिन से रमण महर्षि जी स्कंदाश्रम में जाकर वहीं बसने लग गये थे । रमण महर्षि की जयति के शुभ अवसर पर भगवान रमण की स्तुति करते हुए गणपति मुनिवर ने निम्न लिखित श्लोक को रचा :

देविशक्तिरियं दृशः श्रितजन ध्वान्त क्षयदायिनि । देविश्रियां अंबुजाक्ष महिषी वक्त्र सह प्रच्छद । देवि ब्रह्म वधूः इयं विजयते व्याहर गाधा परा । विश्वाचार्य महानुभाव रमणत्वं स्तौतुकः प्राकृतः

अर्थात्: भक्त लोगों के अज्ञान को दूर भगाने की शक्ति आप की दृष्टि में है । आप के मुखारविंद में अरविन्दाक्ष विष्णु की पत्नी लक्ष्मी वास कर रही है । आप के वचनों में ब्रह्माजी की पत्नी सरस्वति जी हैं । आप तो मानव जाति के आचार्य हैं । आप की स्तुति करने वाले हम साधारण व्यक्ति कौन हो सकते हैं ?

XXXV राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में :

सन् 1923 के फरवरी महीने तक गणपति मुनिवरजी उमासहस्रम का संशोधन सातवीं बार कर चुके थे । गणपति मुनिवर ने सोचा उन का पुत्र महादेव शास्त्री कलुवराई लौट जायेगा और गृहस्थाश्रम में लग जायेगा । पर विशालाक्षी जी का स्वास्थ्य बिगड़ रहा था । पुत्र और बहू को तिरूवण्णामलै में ही रहकर माँ की सुश्रूषा करनी पड़ी ।

सन् 1923 के दिसंबर महीने में काकिनाडा (Kakinada) में कांग्रेस का अखिल भारत के स्तर पर अधिवेशन की योजना बनायी गयी ।

उस अधिवेशन में भाग लेने के लिए स्वागत समिति के अध्यक्ष श्री बुलुसु साम्बमूर्तिजी (Bulusu Samba Murthy) से आमंत्रण मिला था । अधिवेशन में चर्चा के लिए आने वाले विषयों के बारे में गणपति मुनिवर जी के विचारों को सुनने के लिए सब लोग लालाड़त थे । महिलाओं को हर क्षेत्र में समान अधिकार देने के पक्ष में गणपति मुनिवर के विचार थे । उन का मत था कि पुरुष के समान ही स्त्री को भी यज्ञ, होम और श्राध्द कर्मों को करते हुए वेदाध्ययन करने का हक है । ये हक प्रचीन काल में स्त्री के हक में थे । पर समय के बीतते बीतते इन हकों या अधिकारों को उन लोगों से हम ने छीन लिया । यह भारतीय इतिहास की एक दुर्भाग्य पूर्ण घटना है । वेद काल में जो स्वतंत्रता स्त्री को थी उसे जब तक वह नहीं पाती है तब तक वैदिक धर्म का उद्धार नहीं हो सकता । हमारा धर्म प्रगति की ओर बढ़ नहीं सकता—गणपति मुनिवर जी के ये विचार सब लोगों के लिए अंगीकार योग्य थे ।

छुआ छूत के संबंध में गणपति मुनिवर की कुछ दृढ़ धारणाये थी । उन्होंने घोषणा की थी कि छुआ-छूत को मानना धर्म विरोधी बात है । जो बात इस्लाम और ईसाइयों के लिए लागू नहीं हो सकती उस बात को हिन्दुओं पर लागू करने के पक्ष में वे नहीं थे । गणपति मुनिवर जी ने इस बात पर जोर दिया कि धर्म निरंतर है और ये सामाजिक पद्धतियाँ या परिस्थितियाँ समय के अनुसार बदलने वाली हैं । इन दोनों को जोड़ना या इन दोनों में संबंध को जोड़ने का प्रयत्न हमें नहीं करना चाहिए ।

गणपति मुनिवर जी के विचार प्रगतिशील विचार थे । उन के इन विचारों का समर्थन परंपरावादी कर नहीं पाये । वे गणपति मुनिवर के विसद्ध अप-प्रचार करने लगे थे । पर कांग्रेस संस्था को गणपति मुनिवर जी के भाषण से प्रेरणा मिली थी । कांग्रेस पार्टी में भर्ती होकर अपने अभ्युदय भावों को प्रचार करने के लिए उन से कहा गया । इस प्रस्ताव को गणपति मुनिवर ने स्वीकारा नहीं ।

तमिलनाडू के कांग्रेस वालों ने गणपति मुनिवर जी से अपनी सभाओं में आकर अपने भावों को प्रकट करने के लिए न्योता दिया । मुनिवर ने उन लोगों को तृप्त किया । गांधी जी की अध्यक्षता में संपन्न बेलगांव (Belgaun) कांग्रेस अधिवेशन में गणपति मुनिवर ने भाग लिया था । उन्होंने कहा था कि वैदिक धर्म छुआ छूत के पक्ष में नहीं पर विपक्ष में है । गांधीजी को यह बात बहुत भायी थी । भारत की राष्ट्र भाषा के बारे में भी चर्चा हुई थी । गणपति मुनिवर ने घोषणा की कि संस्कृत को ही राष्ट्र भाषा बनानी है । पर इस बात के लिए गांधीजी अपनी सम्मति दे नहीं पाये । राजनीतिक कारणों से हिन्दी ही राष्ट्र भाषा बन सकती है - वाली गांधीजी की बातों के अंतरार्थ को समझने कारण वे इस विषय में चुप रहे । धीरे धीरे इन का नाता कांग्रेस से टूट गया । पर वे हरिजनोद्धार जैसे कार्यक्रमों में उत्साह के साथ भाग लिया करते थे । हमारे देश का संविधान कैसा होना चाहिए इस की कल्पना करते हुए राष्ट्र निबंधन्म (Rashtra Nibandhanam) नामक ग्रंथ को मुनिवर जी ने लिखा है ।

XXXVI सामाजिक समस्या के भँवर में :

बेलगांव कांग्रेस में भाग लेने के बाद अपने शिष्य दैवरत को देखने मुनिवर जी गोकर्ण पहुँचे । दैवरत अब तक विवाह बंधन में बंध चुके थे । उनकी पत्नी श्रद्धा देवी के आजकल पाँव भारी हो गये थे । श्रद्धा देवी की देखभाल के लिए विशालाक्षी की सहायता मांगने के लिए दैवरत को गणपति मुनिवर ने तिरुवण्णामलै आने के लिए न्योता दिया । पर दैवरत जी का बंबई वासी शिष्य मगन लाल ने श्रद्धा देवी जी की देखभाल करने के लिए कहा था । उन्होंने बंबई में ही प्रसव के लिए प्रबंध भी किया था । तिरुवण्णामलै आ भगवान रमण महर्षि जी के दर्शन की इच्छा के कारण श्रद्धा देवी जी ने मुनिवर जी के न्योते को स्वीकार

किया । पति समेत वे तिरूवण्णामलै पहुँची । उनको रमण महर्षि जी के दर्शन लाभ मिले । भगवान रमण महर्षि को देखते ही भक्ति परवशता के कारण उन की आँखों से आँसू झरी की तरह बहने लग गये थे । कुछ दिनों के बाद उन्होंने एक लड़के को जन्म दिया था । लंबी यात्रा और थकावट के कारण उन का स्वास्थ्य बिगड़ गया और लड़का मर गया । पुत्र शोक के दुख को सह कर दंपति थोड़े दिनों के लिए रमण महर्षि की सन्निधि में थे । इस के बाद वे गोकर्ण लौट गये ।

गणपति मुनिवर जी आम्रवृक्ष की गुफा में ही रहने लगे थे । तप के साथ साथ ग्रंथ रचना भी चल रही थी । कुछ स्तोत्र ग्रंथों की और वेदोपनिषदों के रहस्यों से संबंधित एक अपूर्व ग्रंथ विश्व मीमांस (VisvaMimamsa) की रचना उन्होंने की । विशालाक्षी जी गृह कार्यों से निपटारा पाने के बाद श्री विद्या साधन में लगी रहती थी ।

कुछ लोग समाज सुधार के बारे में बड़ी बड़ी बातें तो करते हैं पर उन को कार्यान्वित करने के लिए झिझकते हैं । बड़े लोग कहते एक हैं तो करते और हैं । ऐसे ही एक जनता के सेवक एवं समाज सुधारक का सामना गणपति मुनिवर को करना पड़ा । तमिल नाडू के शर्मादेवी (Sharma Devi) में एक देश भक्त थे । उनका नाम वि.वि.यस.अय्यर (V.V.S. Iyyar) था । उन्होंने विद्यार्थियों में भाई चारे का गुण, देश प्रेम इत्यादि को लाने के लिए एक पाठशाला की स्थापना की थी । उस पाठशाला का नाम भारद्वाज गुरुकुल (Bharadwa Guru Kul) था । इस विद्यालय में सब जातियों के लड़के थे । पर इस पाठशाला के छात्रावास के रसोईया ब्राह्मण था । संस्था के कुछ पदाधिकारी चाहते थे कि ब्राह्मण रसोईया के स्थान पर एक अब्राह्मण रसोईया हो । उनका विचार था कि ऐसा करना एक समाज सुधार संबंधी कार्य है । एक अब्राह्मण की नियुक्ति के लिए संस्था के पदाधिकारी श्री अय्यर पर दबाव

लाने लग गये थे । ऐसे तो अय्यर जी जाति पाति, ऊँच नीच को मानने वाले नहीं थे । पर उन का डर था कि परंपरा वादी उन के इस कार्य से संतुष्ट नहीं होंगे । इसलिए इस विषय में एक निर्णय सोच विचार कर लेने के लिए गणपति मुनिवर जी से उन्होंने प्रार्थना की । मुनिवर जी ने इस समस्या को अनेक कोणों से देखा । उन्होंने सोचा कि असली समाज सुधार का आरम्भ छात्रावास के रसोई घर से ही होता है । इसलिए उन्होंने एक हरिजन को रसोइया के रूप में नियुक्त करने के लिए सलाह दिया । ब्राह्मणेतर कांग्रेसी लोगों ने इस संभावना की कल्पना ही नहीं की थी । यह बात उन की कल्पना के पहुँच के बाहर थी । उन्होंने यह भी सोचा कि यह एक क्रांतिकारी निर्णय है । इसलिए मुनिवर जी के इस सलाह को मानने के लिए वे तैयार नहीं थे । तब जाकर गणपति मुनिवर को मालूम हो गया कि अपने आप को समाज सुधारक कहने वाले कितने पिछड़े हुए हैं । उनकी असलियत को गणपति मुनिवर जी अपने अनुभव से जान गये ।

सन् 1925 के दिसंबर महीने में आंध्र के मचली पट्टनम् (Machali Pattanam) में एक सनातन धर्म सभा का आयोजन हुआ था । उस में भाग लेने के लिए गणपति मुनिवर मचलीपट्टनम् आये । चेरूवु रामकृष्णय्या जी के यहाँ ठहरने का इंतजाम किया गया था । धार्मिक विधियों से संबंधित हमारे चंद आचरणों की ओर सामाजिक पद्धतियों की गणपति मुनिवर जी ने टीका टिप्पणी की थी । इस आलोचना पर परंपरा वादी नाराज हुए । रामकृष्णय्या जी के पिताजी खुद गणपति मुनिवर जी के विचारों का खडन करने लगे । इतना ही नहीं उन्होंने यह भी कहा कि ऐसा एक व्यक्ति हमारे घर में अतिथि बनकर रह नहीं सकता । पर जब उन को गणपति मुनिवर जी ने प्रमाण सहित समझाया । वे गणपति मुनिवर की बातों को ठीक तरह से समझ गये । वे अपनी जल्द बाजी पर पछताने लगे ।

मचली पट्टनम से लौटने के बाद तिरूवण्णामलै में अपने समय को गणपति मुनिवर जी ने काव्य रचना में व्यतीत किया । तब वे ' पूर्ण ' (Poorna) नामक एक उपन्यास को लिख रहे थे । एक निष्ठावान और धैर्यवान एक आदर्श राज्य में कैसे जी सकता है यह उस उपन्यास की कथावस्तु थी । इस उपन्यास का लक्ष्य एक उत्तम सामाजिक और राजनीतिक आदर्शों को लोगों के सामने रखना मात्र था ।

XXXVII पत्नी की विदायी :

विशालाक्षी जी का स्वास्थ्य सन् 1926 से बिगडने लगा था । जप करते समय कभी वे वीभूति का सेवन किया करती थी । इस वीभूति सेवन के कारण शायद उनका स्वास्थ्य और नहीं बिगड पाया था । अस्वास्थ्य के बावजूद भी वे नियम से श्री विद्या जप और दूसरे अध्यात्मिक अभ्यासों में निरंतर लगी रहती थी ।

उन्ही दिनों में दीक्षित दत्तात्रेय जी एक यज्ञ करने जा रहे थे । उस यज्ञ में भाग लेने के लिए उनके शिष्य दैवरत ने प्रार्थना की । पर अपनी पत्नी के स्वास्थ्य को देखते हुए वे उस यज्ञ में भाग लेने के लिए तैयार नहीं हुए । दैवरत के मन में और एक योजना थी । वे गोकर्ण के पास प्राचीन काल के ऋषि आश्रम के समान रहने वाले एक आश्रम की स्थापना करना चाहते थे । वहाँ वे ब्रह्मचारियों को प्रशिक्षण और गोरक्षण जैसे कार्यों को हाथ में लेना चाहते थे । वे चाहते थे मुनिवर जी आश्रम आये और आवश्यक मार्ग दर्शन करें । पर मुनिवर जी तिरूवण्णामलै छोड़ कर बाहर आने की स्थिति में नहीं थे । दैवरत को आश्रम चलाने के लिए कुछ सुझाव वहीं से देते रहे । दैवरत जी अपने गुरुवर मुनिवर की पादुकाओं को अपने आश्रम में रख उन्हीं के कहे अनुसार चलने लगे थे ।

अपने गुरुजी द्वारा रचित ग्रंथों के प्रकाशन के लिए दैवरत ने एक मुद्रणालय की स्थापना की । दैवरत की गुरु भक्ति को देख कर विशालाक्षी जी को अत्यंत आश्चर्य होता था ।

स्वास्थ्य के ठीक न रहने पर भी रोज विशालाक्षी जी रमणाश्रम आया करती थी । रोज रमण महर्षि के प्रति अपनी भक्ति को प्रकट किये बिना वे रह नहीं सकती थी । उन का विश्वास था कि रमण महर्षि और कोई नहीं है, वे तो खुद श्री विद्या को श्री गणेश करनेवाले दक्षिणामूर्ति हैं ।

अण्णामलै विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के सम्मुख भाषण देने के लिए सन् 1925 के जून महीन में एक आमंत्रण गणपति मुनिवर जी को मिला । पहले इस आमंत्रण को स्वीकारने के पक्ष में गणपति मुनिवर नहीं थे । पर पत्नी विशालाक्षी के अनुरोध पर उस निमंत्रण के लिए मुनिवर ने स्वीकृति दे दी । पति पत्नी दोनों मिल कर चिदम्बरम आये । विद्यार्थियों की सभा में भाषण दे, दोनों नटराज के दर्शन के लिए निकले । चिदम्बरम से तिरुवण्णामलै पहुँच ने के बाद विशालाक्षी जी का स्वास्थ्य चिंता जनक बन गया । फिर भी श्रीविद्या साधना को छोड़े बिना मात्र द्रव को आहार के रूप में स्वीकार करने लगी थी ।

औषधियों के सेवन को उन्होंने छोड़ दिया था । वे कहा करती थी कि जप तप से उनको शक्ति मिल रही है । श्रीविद्या साधना कार्य को आरंभ किये सात दिन हो गये थे । आठवे दिन उन्होंने मुनिवर जी को आश्वासन दिया कि उनका जप उन को अवश्य फल देनेवाला है । विशालाक्षी जी सही अर्थ में मुनिवर जी की सह धर्मचारिणी थी । पति की आध्यात्मिक साधना में इस आदर्श पत्नी को भी सम भाग था । मुनिवर जी के शिष्यवर्ग के लिए विशालाक्षी वस्तव में काशी विशालाक्षी अन्नपूर्णा थी । एक साधारण गृहिणी अपने कौटुंबिक कर्तव्यों को निभाते हुए कैसे ऊपर उठ सकती

है, इस के लिए वे एक प्रत्यक्ष उदाहरण थी । प्राचीन काल में ऋषि मुनि लोग गार्हस्थ्य जीवन को बिताते हुए समाज की प्रगति के लिए कैसे कटिबद्ध रहते थे यह हम गणपति मुनिवर और उन की पत्नी विशालाक्षी जी को देखकर जान सकते हैं । 26.7.1926 के दिन अपने पैतालीसवें वर्ष में विशालाक्षी जी अपने शरीर को त्याग कर अमर हो गयीं ।

XXXVIII वर्णाश्रम संबंधी खलवली :

पत्नी विशालाक्षी के स्वर्गवास के बाद सब ने सोचा कि गणपति मुनिवर रूढिगत रीति से सन्यासाश्रम को ग्रहण करेंगे । पर सन्यास ग्रहण करने के संबंध में गणपति मुनिवर जी के विचार कुछ और थे । भगवान् रमण महर्षि ने सन्यास का ग्रहण नहीं किया था । पर वे नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे । जनेऊ और सफेद खादी पहनने वाले गणपति मुनिवर जी गृहस्थ होते हुए भी गेरूवा रंग के वस्त्रों को पहनने वाले किसी सन्यासी से कम नहीं थे ।

एक बार एक व्यक्ति मुनिवर जी से मिलने आया । ये काषाय वस्त्र धारी नहीं थे । हाथ में कमंडल भी नहीं था । फिर भी गणपति मुनिवर जी के दामाद सोमयाजुलु से उस आगंतुक ने कहला भेजा : जाकर गणपति मुनिवर जी से कहिए कि एक सन्यासी मिलने आया है । सोमयाजुलु जी सोच रहे थे कि ये कैसे सन्यासी है । इन्होंने काषाय वस्त्रों को भी धारण नहीं किया था । इतने में गणपति मुनिवर जी बाहर आये । पर वह व्यक्ति वहाँ नहीं था । वे अदृश्य हो गये थे । गणपति मुनिवर जी को आश्चर्य हो रहा था कि यह व्यक्ति कौन है जो मुझ से मिलने आया था । काषाय वस्त्रों को धारण किये बिना ही एक सन्यासी बन सकता है, इस बात के लिए यह एक अच्छा उदाहरण है ।

पत्नी वियोग का प्रभाव गणपति मुनिवर जी के स्वास्थ्य पर पड़ा । बेटी और बहू दोनों मिलकर गणपति मुनिवर की खूब सेवा कर रही थी । पत्नी के निधन के कारण जो खाई बन गयी थी उसे कोई पाट नहीं सका । पत्नी के हाथ के भोजन की रूचि अथवा स्वाद और स्वस्थ गुण मुनिवर जी को मिल नहीं पाये ।

कुछ दिनों के बाद गणपति मुनिवर तिरुवण्णामलै से सिकंदराबाद आये । वहाँ उन्होंने कृष्ण देवराय आंध्र भाषानिलयम् (Krishna Devaraya Andhra Bhash Nilayam) नामक पुस्तकालय के रजतोत्सव में भाग लिया । भगवान रमण महर्षिजी के जीवन और उन के उपदेशों के बारे में गणपति मुनिवर जीने कई सभाओं में भाषण दिये । उस समय के भारी समाज सुधारक भाग्यरेड्डी और किषन राव दोनों ने मिलकर एक बृहत सम्मेलन का आयोजन किया था । उस सभा में मुनिवर जी ने तर्क सहित इस बात को प्रमाणित किया कि वैदिक धर्म ने समाज में असमानताओं को कभी बढ़ावा नहीं दिया था । गणपति मुनिवर जी के भाषण से कुछ परंपरावादी लोग संतुष्ट नहीं थे । पर सभा में आये हुए बुद्धि जीवियों और सामान्य लोगों को इन के भाषण के द्वारा नयी स्फूर्ति मिली थी ।

सिकंदराबाद और हैदराबाद की यात्रा के बाद गणपति मुनिवर जी तिरुवण्णामलै वापस आये थे । आम्रवृक्ष की गुफा में ठहर कर छः महीनों के लिए अपनी साधना में लगे रहे ।

एक दिन मद्रास शहर के वर्णाश्रम संघ से गणपति मुनिवर जी को एक निमंत्रण मिला । पूरे भारत के महान पंडित मद्रास में सन् 1927 के दिसंबर महीने में इकट्ठा होकर छुआ छूत के खंडन के विरुद्ध एक प्रस्ताव पास कर राष्ट्रीय कांग्रेस को भेजना चाहते थे । पंडित मदन मोहन मालव्या, गणपति मुनिवर जैसे अनेक विद्वानों को संघ के सचिव ने न्योता भेजा था । संघ के सचिव, मुख्य रूप से, यह नहीं जानते थे कि मुनिवर जी छुआ छूत

के विरूद्ध, उस का खण्डन करते हुए जोर दार भाषण दे चुके हैं । गणपति मुनिवर को बुलाना उस संघ के सचिव के लिए ओखली में सर देने के बराबर था । मुनिवर जी को क्यों बुलाया गया था उस के पीछे कौन सा, औचित्य छिपा था, यह किसी की समझ में नहीं आयी । सचिव के इस कार्य को, गणनामें लिये बिना वे वहाँ आये । पर हुआ यह कि पंडित मदन मोहन मालव्या जी और गणपति मुनिवर जी उस सम्मेलन में भाग लिये बिना बाहर आ गये । वर्णाश्रम धर्म के पक्ष में लड़ने वाले इस संघ का विरोध करते हुए एक प्रतिक्रिया के रूप में मद्रास के हिन्दू हाइस्कूल में छुआ छूत का खण्डन करते हुए और एक सभा पं. मदन मोहन मालव्या जी की अध्यक्षता में आयोजित हुई । “ वर्णाश्रम धर्म में विश्वास रखने वालों को बदलना इतना आसान नहीं । ये सब के सब जिद्दी होते हैं । उन से वाद विवाद करना एक दम व्यर्थ प्रयत्न है ” । यह बात गणपति मुनिवर जी की समझ में आ गयी थी ।

इस बीच अपने ‘ उपदेश सारम् ’ नामक तमिल ग्रंथ को संस्कृत में अनूदित कर अध्ययनार्थ गणपति मुनिवर जी के हाथों में भगवान् रमण महर्षि ने रखा था । रमण महर्षि जी की अनुवाद शैली, अनुवाद की सरलता, सिद्धांतों का स्पष्ट निरूपण आदि आदि को देख वे आश्चर्य चकित हो गये । इस कृति के लिए एक भाष्य की रचना मुनिवर जी ने तुरंत की । साथ ही साथ फिर एक बार इंद्राणि सप्रशति का भी संशोधन किया ।

अब तक मुनिवर जी के शिष्य सुधन्व वकालत को छोड़ कर मद्रास से पांडिच्चेरी पहुँच गये थे । उनका संपर्क अरविन्द आश्रम से भी था । उन्होंने यह संदेश गणपति मुनिवर जी तक पहुँचाया कि अरविन्द घोष मुनिवर जी से मिलने के इच्छुक हैं । पांडिच्चेरी के आश्रम से आह्वान को पा सन् 1928 के अगस्त महीने के दूसरे सप्ताह में मुनिवर जी पांडिच्चेरी पहुँचे ।

XXXIX पांडिच्चेरी के अरविन्दाश्रम में :

गणपति मुनिवर जी पांडिच्चेरी में अपने शिष्य सुधन्व के यहाँ ठहरे हुए थे । उन्ही दिनों में एक दिन अरविन्दाश्रम में अरविन्द घोष जी का जन्म दिन मनाया गया । इस उत्सव में भाग लेने के लिए अरविन्द योगी जी के शिष्य भक्त और चाहने वाले हजारों की संख्या में आये थे । हाल ही में मुनिवर जी का परिचय उनकी पत्रिका ' आर्य ' (Arya) के द्वारा हुआ था । उनके लेखनों को पढ़ने के बाद गणपति मुनिवर जी ने अनुभव किया कि उन दोनों में एक दिव्य संबंध है । आपस में मिलकर बातचीत करने के लिए मौन समागम मात्र काफी है । हाल ही में अरविन्द योगी ने गणपति मुनिवर की कृति उमासहस्रम पढ़ी थी । उस कृति की उन्होंने एक श्रेष्ठ काव्य के रूप में प्रशंसा की थी । कृति के अध्ययन के बाद गणपति मुनिवर जी से समागम करने की इच्छा उन्होंने प्रकट की थी । उनकी वह इच्छा शीघ्र ही पूरी होने वाली थी । मिलन के लिए समय आसन्न हुआ था । एक दिन गणपति मुनिवर ने अरविन्द योगी जी से भेंट कर अपनी श्रद्धा भक्ति को प्रकट किया ।

अरविन्दाश्रम में माता भी रहती थी । गणपति मुनिवर से मिलकर वे भी अत्यंत प्रसन्न हुई थी । माता कहा करती थी कि उन दोनों के पास, उन दोनों की तपस्या के प्रभाव के कारण, दुष्ट शक्तियाँ आने से डरती हैं और अपने आप दूर हट जाती हैं ”। गणपति मुनिवर जी अरविन्द योगी के बारे में अपनों से कहा करते थे कि उनके पास अध्यात्मिक शक्ति स्वयं प्रकट होती है और फैल जाती है । साथ बैठ कर ध्यान करने के लिए माता जी ने मुनिवर से कहा था । बस दोनों बैठ कर ध्यान करने लगे थे । यहाँ एक विचित्र बात हुई थी । माता जी नेत्रों को मूंद कर ध्यान मग्न हो गयी थी । पर मुनिवर जी का ध्यान करने की रीति ही कुछ और थी । वे कभी, ध्यान करते समय अपने

नेत्रों को मूंद नहीं लेते थे । ध्यान के बाद माता जी ने वहाँ इकत्रित लोगों को बताया कि गणपति मुनिवर जी एक महायोगी है । जैसे ही ध्यान करने लगते हैं वैसे ही वे ध्यान की गहराई तक पहुँच जाते हैं । उन्होंने यह भी कहा : जब मैं ध्यान कर रही थी तब वे मेरे साथ थे । एक महीने के लिए मुनिवर जी पाडिच्चेरी में रहे । इस एक महीने में एक सौ आठ श्लोकों वाले काव्य तत्व शासनम (TatwaSasanam) की रचना की थी । अरविंद योगी ने इस काव्य की बहुत प्रशंसा की थी । मुनिवर जी जब तिरूवण्णामलै जाने के लिए तैयार हुए तब मुनिवर जी को विदा देते हुए माता जी ने कहा था : आप जब चाहे तब अरविन्द आश्रम आ सकते हैं और अरविन्द से मिल सकते हैं । हम सदा आपके स्वागत के लिए तैयार रहेंगे ।

XL जीवन वृत्तांत :

तिरूवण्णामलै लौट कर मुनिवर जी ने और एक महत्व पूर्ण ग्रंथ को रचा । ऋग्वेद से इन्द्रके सहस्र (हजार) नामों को लेकर एक सौ आठ श्लोकों में उन का प्रयोग कर इन्द्र सहस्रनाम स्तोत्र (Indra Sahasranamm Stotra)को लिखा । इस कृति का संस्कृत साहित्य में अपना एक स्थान है । पद या वाक्यों को पूर्ण करने वाले पूरक शब्दों का प्रयोग किये बिना ही श्लोकों की रचना हुई थी । मुनिवर जी ने इस ग्रंथ का पाठ रमण महर्षि के सम्मुख कर इन्द्र के नाना नामों से निम्नलिखित नामों के अर्थ को समझाया । वे नाम हैं : अचक्रयः, वर्तमानः, अवनीलः, सुपूर्णः आदि आदि । इस बीच एक घटना घटी । सेलम के वकील श्री बी.पी. नरसिंह स्वामी जो वकालत छोड़ चुके थे, वे रमण महर्षि जी की जीवनी लिखने के उद्देश्य से सामग्री का चयन कर रहे थे । वे गणपति मुनिवर जी से मिले । रमण महर्षि के निकटवर्ती होने के कारण वकील साहब ने मुनिवर जी से रमण महर्षिजी के जीवन से संबंधित

कुछ मुख्यांशों को बताने के लिए, प्रार्थना की । मुनिवर जी मान गये और उन सब महिमा युक्त बातों का ब्योरा भी दिया जिसे वे स्वयं जानते थे । रमण महर्षि जी ने भी श्री नरसिंह स्वामी जी के प्रश्नों का उत्तर देते हुए अपने जीवन से संबंधित बातों को बताया था । सामग्री के संकलन के बाद श्री नरसिंह स्वामी जी ने “ आत्म साक्षात्कार ” और “ श्री रमण महर्षि जी का जीवन और उनके उपदेश ” नामक दो ग्रंथों को अंग्रेजी में रचा ।

नरसिंह स्वामी जी ने जिस सामग्री का संकलन किया था उस में कई बातें गणपति मुनिवर जी के जीवन से भी संबंधित थी । इस उपलब्ध सामग्री के आधार पर गणपति मुनिवर जी के शिष्य कपालि शास्त्री जी ने “ वशिष्ठ वैभवम् नामक जीवनी संस्कृत में लिखी ।

रमण महर्षि ने अपने उपदेशों को पद्य रूप में लिखकर परिष्कार हेतु अपने शिष्य तमिल कवि मुरुगनार (Murugaṇār) जी को दिया । मुरुगनार जी उन पद्यों में से, गणपति मुनिवर जी की सहायता से संपादित कर उल्लदु नार्पदु (Ulladu Nārpadu) और सत्यवन्नु कुरितु 40 पद्यगलु (Satyavannu Kuritu 40 Padyagalu) नामक ग्रंथ को तैयार किया । पहले के चालीस पद्यों को सत्दर्शनम् (Sat Darhanam) नाम से संस्कृत में अनूदित कर रमण महर्षि के भक्तों के सामने गणपति मुनिवर ने प्रस्तुत किया ।

XLI कुलुवे ग्राम में आगमन :

सन् 1929 का मार्च महीना चल रहा था । ग्रीष्म ऋतु अपने प्रचंड कोप को दिखा रही थी । गणपति मुनिवर तिरूवण्णामलै के आम्र वृक्षवाली गुफा में वास कर रहे थे । गरमी एक दम असहनीय थी । गोकर्ण से अपने गुरुवर के दर्शन के लिए कुछ

शिष्य आये हुए थे । मुनिवर जी गरमी के कारण जो कष्ट भोग रहे थे वह उन से देखा नहीं गया । तिरूवण्णामलै छोड़ कर गोकर्ण या शीतल प्रदेश सिसी (Sirsi) आने के लिए शिष्यों ने गणपति मुनिवर जी से प्रार्थना की । उन की प्रार्थना के अनुसार मुनिवर जी गोकर्ण चले आये । पर वहाँ उन को निराश होना पड़ा । उन का प्रिय शिष्य दैवरत तपस्या के लिए गोकर्ण को छोड़कर और कहीं गया हुआ था । फिर भी दैवरत की पत्नी श्रद्धा देवी ने गणपति गुरूवर जी का स्वागत कर उनके आवास के लिए प्रबंध किया । पर न जाने क्यों, गोकर्ण की हवा भी उन को अच्छी नहीं लगी । तीव्र उष्णता के कारण उन का स्वास्थ्य बिगड़ गया । दैवरत जी का भाई सीताराम भारती सिसी के पासवाले कुलुवे नामक ग्राम के रहने वाले थे । वे एक आयुर्वेद के डॉक्टर थे । गोकर्ण आ वे मुनिवर जी की चिकित्सा करने लगे । कुलुवे शीतल प्रांत होने के कारण सीताराम भारती ने मुनिवर जी से कुलुवे में आकर बसने के लिए प्रार्थना की । कुलुवे पहुँचने के लिए मार्ग में पड़ने वाली श्यामली (Shyamali) नदी को पार करना था । श्यामली के किनारे एक शंकर मठ था । एक रात के लिए मुनिवर जी उस मठ में ठहरे । इस मठ की स्थापना विश्वानंद सरस्वती नामक एक स्वामी जी ने की थी । सोड स्वर्ण वल्ली (Sonda Swarna Valli) नामक गांव के धनी जमींदार मठ के खर्चों के लिए आर्थिक अनुदान दिया करता था । पर संपत्ति के लिए वारिसों में एक झकड़ा चल रहा था । निर्णय के लिए वारिसों ने न्यायालय के दरवाजों को खट खटाया था । फैसला अभी नहीं हुआ था । इस लिए मठ के पूजा-पाठ संबंधी खर्चों के लिए पैसे नहीं मिल रहे थे । मठ के सर्वज्ञेन्द्र सरस्वती जी ने इस बात की चर्चा गणपति मुनिवर जी से की । मठ की आर्थिक स्थिति पर मुनिवर जी को बहुत दुख हुआ । पूजा पाठ के लिए आवश्यक धन राशी के लिए प्रबंध करने के लिए लक्ष्मी

नरसिंह चंद्रमौलीश्वर की प्रार्थना करते हुए एक श्लोक को लिखकर मुनिवर जी ने पीठाधिपति को अर्पित किया । सब को आश्चर्य चकित करते हुए कम समय में मठ के खर्चों के लिए आवश्यक धन राशी मिलने लगी । इस प्रकार मुनिवर की प्रार्थना की सुनवाई हुई ।

गणपति मुनिवर जी कुलुवे ग्राम के उपांत तक पहुँच गये थे । कुलुवे के लगभग पचास वेद पारंगदों ने “ यो देवनाम् (दहरसूक्तम्) प्रथमम् पुरस्तात् ” का पाठ करते हुए रूढिगत रीति से उन का स्वागत कर एक जुलूस में उन को सीता रामभारतीजी के घर तक पहुँचाया । गाँव के पंडित गणपति मुनिवर जी की प्रतिभा, पांडित्य, विद्वत्ता, और लब्ध अद्यात्मिक सिद्धियों से परिचित थे । अपने समय के एक महापुरुष को अपने गाँव में देखकर वे अत्यंत आनंद का अनुभव करने लग गये थे । सिस्री के देवेन्द्र सुब्रह्मण्य विश्वमित्र जी इस के पहले कुम्वा (Kumwa) की पाठशाला में मुनिवर जी के भाषण सुन चुके थे । मुनिवर जी के भाषण से वे प्रभावित भी हुए थे । अब मुनिवर जी उन्हीं के गाँव में थे । इस सुनहरे अवसर का लाभ उठाकर हर्ष के साथ विश्वामित्र ने उन की सेवा की । वे मुनिवर जी के आप्त शिष्य की भूमिका निभाने लगे । कुलुवे का शीतल वातावरण, गाँव वालों का आदर सत्कार आदि आदि ने मुनिवर जी को संतुष्ट किया था । ध्यानादि साधनाओं को वे अबाध गति से निभाने लगे । गाँव के विद्वत् जन और सामान्य लोग भी आ आकर उन के उपदेशों को सुनकर मंत्र दीक्षा बद्ध भी होने लगे ।

गणपति मुनिवर जी के कुलुवे जीवन से कुछ अद्भुत घटनायें जुड़ी हुई हैं । गणेश भट्ट कुलुवे के निवासी थे । उन की पत्नी अहल्याजी एक सदगुण संपन्न युवती थी । विवाह के बाद कुछ समय तक वह चंगी थी । उस के बाद अचानक उन के बर्ताव में परिवर्तन आने लग गया था । देखते ही देखते वे मूक बन

गयी । अपने वस्त्रों को निकाल फेंक कर कहीं जाकर छिप जाती थी । मंत्र तंत्र और चिकित्सा से कोई फल नहीं निकला । इन सब के बारे में सुनकर मुनिवर जी एक दिन गणेश भट्ट के घर के सामने जाकर खड़े हो गये । घर में उस समय अहल्या जी थी । उन का नाम लेकर बुलाते हुए उन्होंने कहा वस्त्रों को धारण कर बाहर आ जाओ । उन के कहे अनुसार अहल्या जी वस्त्र धारण कर बाहर आ गयी । उस दिन से वह ठीक हो गयी ।

इस घटना के कुछ दिनों के बाद गणेश भट्ट जी ज्वरग्रस्त हुए । उन को टैफाइड (Typhoid) हो गया था । मुनिवर जी ने स्वरचित इन्द्राणि सप्तशति की एक प्रति अहल्या को देते हुए भट्टजी के सिरहाने बैठकर पारायण करने के लिए कहा । चमत्कार कहिए था और कुछ भट्टजी का ताप कम हो गया और वे शीघ्र ही स्वस्थ बन गये ।

एक दिन गणपति मुनिवर सूखे घास के छप्पर के नीचे बैठकर वहाँ के गांव वालों से बातें कर रहे थे । पास वाले पुआल में आग लग गयी थी । आग फैल गयी और हर कहीं आग की लपटे उठने लगी थी । मुनिवर जी इस फैलती हुई आग को देखकर थोड़ा भी विचलित नहीं हुए । वे ऋग्वेद के अग्नि मंत्र का जाप करने लगे । उसी क्षण हवा की एक तीव्र झोक आयी और जलते हुए पुआल को दूर कहीं ले गई । इस तरह उस स्थान को अग्नि स्पर्श नहीं कर पाया ।

उन्हीं दिनों में मुनिवर जी के भाई शिवराम शास्त्री एक दिन (6.2.1930) अनिरीक्षित आये । उन को देखते ही मुनिवर जी हकबकाये । उन्होंने कहा : क्या अपने देह त्याग के लिए आये हो क्या ? दूसरे दिन शिवराम शास्त्री ने छाती में दर्द का अनुभव किया और देखते ही देखते उन का निधन हो गया ।

और एक दिन : मुनिवर जी अपने पुत्र महादेव शास्त्री के साथ कार में बैठकर कुलुवे से दूसरे गांव जा रहे थे । एक मोड़ लेते समय कार उलट गया । महादेव शास्त्री के हाथ की हड्डी टूट गयी थी । गणपति मुनिवर जी बच गये थे । डाक्टरों ने हड्डी को फिर से अपने स्थान पर बिठाने के लिए महादेव शास्त्री को अस्पताल ले जाने के लिये कहा । पर मुनिवर और एक ढंग की चिकित्सा करना चाहते थे । वेदों में कण्व ऋषि के पुत्र मेधातिथि के द्वारा प्रयुक्त अस्थि संधान मंत्र का जप करते हुए भगवान से मुनिवर जी ने प्रार्थना की । लो सब ठीक हो गया । इस चमत्कार को देखकर वहाँ के डाक्टर दांतों तले उंगली दबाने लग गये थे ।

उपर्युक्त घटनायें प्रमाणित करती हैं कि मुनिवर जी को वेद मंत्राध्यन से किस प्रकार की अद्भुत शक्तियाँ मिली थी ।

XLII सिर्सीवास और सदृदर्शन की रचना :

अपने शिष्य देवेन्द्र विश्वमित्र के निमंत्रण को स्वीकार कर गणपति मुनिवर जी कुलुवे से सिर्सी के लिए रवाना हुए । सिर्सी में विद्वानों की एक सभा आयोजित होनेवाली थी । विश्वमित्र चाहते थे कि गणपति मुनिवर जी इस सभा में भाग ले । इस लिए उन्होंने मुनिवर जी को सिर्सी आने का न्योता दिया था । पुण्डरीकराया (Pundareekaraya) नामक प्रमुख विद्वान भी आयोजित होनेवाली सभा में भाग लेने वालों में से एक थे । इन्होंने पाश्चात्य देशों का भ्रमण किया था । वे वहाँ रह भी चुके थे । वे एक बार क्याथलिक ईसाइयों के गुरूवर पोप जी से भी भेंट कर चुके थे । ये अपनी प्रवृत्ति से धार्मिक थे । बाह्याडंबर को ये रत्ती भर पसंद नहीं करते थे । इस पुण्डरीकराया के बड़े पुत्र संदर पंडित विश्वमित्र के सहपाठी थे । गणपति मुनिवर जी के उपदेशों

को वे सुन चुके थे । पुंडरीकराया के दूसरे पुत्र माधव पंडित अभी छोटे लडके थे । राया जी सिसी के एक बगीचे के पास आनंद आश्रम नामक एक आश्रम का निर्माण कर अपने समय को पूजा, प्रार्थना में बिताना चाहते थे । पर अपने स्वास्थ्य के कारण वे आनंदाश्रम में न रहकर गांव के घर में ही रहते थे । गणपति मुनिवर जी को देखते ही उन्हें वहाँ (आनंदाश्रम में) ठहरवाकर उस आश्रम के नाम को सार्थक बनाना चाहते थे । विश्वमित्र और सीताराम भारती दोनों ने मिलकर मुनिवर जी से आनंदाश्रम में ठहरने के लिए अनुरोध किया । मुनिवर जी मान गये और उस आश्रम को अध्यात्मिक कार्य कलापों के लिए केन्द्र बनाया । संदर्शन हेतु आनेवालों को मंत्र दीक्षा देते हुए रमण महर्षिजी के उपदेशों से अवगत भी कराते थे । गणपति मुनिवर जी की तपः शक्ति विविध रूपों में प्रकट हुआ करती थी । कपाल भेद के बाद वे एक सिद्ध पुरुष बन गये थे । कभी कभार उन का सूक्ष्म शरीर बाहर आकर शिष्यों को अनुग्रहीत किया करता था । रामचंद्र भट्ट नामक एक सीधा सादा भक्त आनंदाश्रम आया करते थे । वे संस्कृत भाषा को जानते नहीं थे । पर मुनिवर जी के उपदेशों को सुन सुन कर बहुत जल्द वे संस्कृत भाषा के अच्छे विद्वान बन गये । उन की विद्वत्ता देख सब एक दम चकरा गये थे ।

इस बीच एक दिन तिरूवण्णामलै से उन के शिष्य विश्वनाथ जी आनंदाश्रम आये । रमण महर्षि ने तमिल में उल्लदु नार्पदु (Ulladu Narpadu) नामक एक कृति को रचा था । उस के संस्कृत अनुवाद को फिर एक बार परिष्कृत करवाने के लिए विश्वनाथ द्वारा एक प्रति को रमण महर्षि ने भेजा था । मुनिवर जी ने सोचा कि अनुवाद को परिष्कृत करने से पुनः अनुवाद करना बेहतर है । विश्वनाथने गणपति मुनिवर जी के विचार का समर्थन किया । अनुवाद कार्य मुनिवर जी से आरंभ हुआ । इस बीच पांडिच्चेरी से शिष्य कपालि शास्त्री, उन की पत्नी, कलुवराई से पुत्र महादेवशास्त्री,

सीताराम भारती उन की पत्नी, पुत्र सब आनंदाश्रम आये । सब मुनिवर जी से मिलकर रहने लगे ।

अनुवाद करने के पहले मुनिवर हर पद्य का सारांश और उस के महत्व को समझाते थे । मार्च महीने के 14 वी तारीख को मुनिवर ने अनुवाद कार्य को पूरा किया । ' उल्लदुनार्पदु ' संस्कृत में अनूदित होकर सद्दर्शन के शीर्षक को पाया । इस अनुवाद रचना के बाद गणपति मुनिवर जी में एक नूतन मानव धर्म व्यक्त होने लगा था । अनेक रूपों, नामों के बीच वे एकता को देखने लगे थे । उन का मत था कि भिन्नता या वैविध्यता केवल बाह्य है । एक ही सत्य अनेक रूपों में प्रकट हो रहा है इस का अनुभव गणपति मुनिवर जी करने लगे थे । संस्कृत में कपालि शास्त्री ने सद्दर्शन की टीका लिखी । सद्दर्शन और उस की टीका को शिष्य रमण महर्षि के पास ले गये । गणपति मुनिवर जी अनुवाद कार्य के कारण थक गये थे । विश्राम करने के लिए गणपति मुनिवर जी को कुलुवे के पास वाले एक छोटे से जलाशय के पास सीता राम भारती ले गए । आराम लेने के बाद मुनिवर जी कुलुवे वापस आये । इन दिनों में मुनिवर ने प्रचण्ड चण्डि त्रिशति (Prachanda Chandi Trisathi) नामक तीन सौ श्लोकों वाले एक ग्रंथ को रचा ।

सद्दर्शन भगवान रमण महर्षि जी द्वारा तमिल में रचित उल्लदु नार्पदु का संस्कृत अनुवाद है । यह उपजाति छंद में लिखा गया काव्य है । इसे हम अनुवाद नहीं स्वतंत्र कृति कह सकते हैं । स्वतंत्र कृति कहना ही ज्यादा उचित भी है । अनुवाद कार्य को करते करते अपने कार्य और कपालि शास्त्री की टीका के बार में पत्राचार के द्वारा भगवान रमण महर्षि को समझाते थे । समय समय वे उनके अनुग्रह को भी पाते थे । तमिल मूल कृति उल्लदु नार्पदु में बयालीस श्लोक अर्थात् पद्य हैं । पर सद्दर्शन अनुवाद में चवालीस श्लोक थे । आखिरी दो श्लोक काव्य की पृष्ठ भूमि,

महत्व के साथ साथ मुनिवर जी और रमण महर्षि जी के संबंध को बताते हैं । रमण महर्षि तो एक जीवन् मुक्त पुरुष थे । उन की भाषा एक दम सरल थी । हर शब्द आत्मा से निकलने वाला अमृतमय शब्द था । वे खुद सूर्य थे । उनके शब्द सूर्य किरणों के समान प्रकाश युक्त थे । मुनिवर कहते थे सददर्शन इन किरणों को प्रतिबिंबित करने वाला आइना मात्र है ।

सददर्शन के अंतरार्थ को समझने के लिए भाष्य की आवश्यकता पड़ती है । भाष्य के आरंभ में एक सुदीर्घ भूमिका है । इस में सृष्टि, बंधन, मुक्ति, साधना, सिद्धि, अनुग्रह, अद्वैत जैसे विषयों की चर्चा भी है । इन विषयों से संबंधित विषयों को समझाने के लिए उपदेशसारम्, रमणगीता, उमासहस्रम् आदि आदि ग्रंथों से भी विषयों का चयन हुआ था । भाष्य के अंत में काव्य कंठजी के सामर्थ्य, शास्त्र ज्ञान संपत्ति के बारे में उल्लेख है । कपालि शास्त्री ने तर्क युक्त यह साबित किया है कि गणपति मुनिवर जी रमण महर्षि जी के शिष्य कोटी के भूषण कैसे बने हैं ।

सददर्शन सत्य का प्रत्यक्ष अनुभव है । इस में उस सत्य का प्रत्यक्ष दर्शन है जिस को भगवान रमण ने खुद अपनी आंखों से देखा था । अगर उपनिषद् प्राचीन ऋषि मुनियों का अनुभव सार है तो रमण महर्षि जी के स्वानुभवों का उपनिषद् सार सददर्शन है, । यह एक ऐसा उपनिषद् है जो किसी भी धर्म के कोई सत्य का विरोध नहीं करता है । रमण महर्षि को सगुण और निर्गुण दोनों का अनुभव था । इन दोनों में किसी प्रकार के विरोध को उन्होंने नहीं देखा था । सत्य दर्शन के लिए दो मार्गों को रमण महर्षि ने दिखाया । वे हैं - आत्म निष्ठा और शरणागति । इस संसार को दोनों - ज्ञानी और अज्ञानी - देखते हैं । उन का मत है - अज्ञस्य विज्ञस्य च विश्वं अस्ति । पर अज्ञानी लोग उपांत पर ही खड़े हो जाते हैं । ज्ञानी लोग उपांत को पार कर अंदर के सत्य को देखते हैं । सददर्शन उन क्लिष्ट तात्त्विक बातों को

सरल ढंग से समझाता है जो जन सामान्य की समझ में यो ही नहीं आती है । यह द्वैताद्वैत के भेद को मिटा कर एकता की ओर हमें ले जाता है । मुनिवर जी सद्दर्शन के द्वारा रमण महर्षि का दिव्य दर्शन, सब पाठकों को करवाते हैं ।

XLIII वेदों का विशाल दृश्य :

गणपति मुनिवर जी सिसी के आनंदाश्रम से पत्र व्यवहार के द्वारा भगवान रमण महर्षि को अपनी प्रगति का समाचार दिया करते थे । हर एक पत्र में रमण महर्षि जी के अनुग्रह की कामना करते थे । इन दोनों के बीच जो दैवी संबंध था उस संबंध को इन दोनों का पत्र व्यवहार प्रमाणित करता है ।

सन् 1931 के नवरात्री के बाद गणपति मुनिवर जी सिसी से कुलुवे वापस आये । वहाँ वे अपने समय को ऋग्वेद के अध्ययन में व्यतीत करने लगे थे । महाभारत की कथा के आधार पर और महाभारत में आनेवाले वीरों की जीवनियों का संकलन कर भारत चरित्र परिक्षा नामक एक आलोचना ग्रंथ को मुनिवर ने रचा । उनके शिष्य इसे भारत विमर्शा अथवा भारत मीमांसा के नाम से पुकारते थे । श्रीकृष्ण से मिलने वाले महाभारत के जितने भी वीर हैं वे सब मंत्रद्रष्टा थे । तपः शक्ति के द्वारा वेद मंत्रों का प्रत्यक्ष दर्शन कर मंत्र शक्ति को पा कौरवों को हरा कर धर्म की रक्षा उन्होंने की थी । प्राचीन काल के मंत्र द्रष्टाओं के पास दुष्ट शक्तियों को वश में कर लेने की, देश की शांति या प्रशांतता की रक्षा करने की शक्ति थी । वे मानव कल्याण के लिए मंत्र शक्तियों का उपयोग किया करते थे । कौरव तो परकीय थे । महाभारत युद्ध सिर्फ आज के भारत की सीमाओं तक ही सीमित न था । उसका क्षेत्र बहुत व्यापक था, इस की सूचना इस ग्रंथ में हमें देखने को मिलती है । कलियुग के आरंभ में महा भारत युद्ध लड़ा गया था । उस की पृष्ठभूमि और फलितांश

मानव जाति के लिए मार्ग दर्शक हैं । कलियुग वास्तवमें कलह और विवादों का युग है । महाभारत में इस की सूचना मिलती है कि कलह कैसे जन्म लेता है, कैसे उन के पर्यवसान होते हैं, धर्म की जीत अंत में कैसे होती है इत्यादि इत्यादि ।

गणपति मुनिवर ने इस बात को प्रमाणित किया है कि महाभारत और दूसरी पौराणिक गाथाओं की रचना करने वाले कविगण हमारे प्राचीन ऋषि मुनियों के जीवन और उन की साधनाओं को जानने में गलतियाँ कर लोगों को गुमराह कर रहे हैं । वैदिक धर्मों के प्रति अपचार करने वाले प्रसंगों को उदाहरण के रूप में गणपति मुनिवर जी ने दिखाया है । जो अपने आप को पंडित समझ बैठे हैं वे वेदों के बारे में स्वतंत्र रूप से सोच नहीं पा रहे हैं । पिछले जमाने के लेखकों ने जिन चक्र व्यूहों की रचनाये की थी उन्हीं में जकड़ स्वतंत्र रूप से सोचना भूल गये हैं । गणपति मुनिवर जी का विचार था कि वेदों के रहस्यों को जानने के लिए तपादि साधनाओं की आवश्यकता है । हमारे ढेर सारे पंडित कठिन साधना करने के पक्ष में नहीं हैं । साधना करना वे चाहते नहीं हैं । वेद मंत्रों के रहस्यों को जानने के लिए जिस मार्ग पर हमें चलना पड़ता है वह मार्ग साधरण पंडितों के पहुँच के बाहर का मार्ग है । पर गणपति मुनिवर ने अपनी शक्ति और अपने सामर्थ्य को ऋग्वेद के संशोधन या शोधन में लगाया था । जब वे अपने मन को वेदमंत्रों पर केन्द्रीकृत करते थे तब उन की प्रतिभा फूट पड़ती थी । इस फूट में एक विनूलन सौंदर्य को देखा जा सकता है । उन के कंठ से वेदवाणी निकला करती थी । एक बार जब दैवरत मुनिवर के साथ थे तब उन के मुँह से दो मंत्र फूट पड़े थे । विश्वामित्र से संबंधित मंत्र त्रिष्टुभ छंद में था और विष्णु मंत्र गाइत्रि छंद में ।

दिवोगभस्तिररतिह पृथिव्यास्त्वेशम्
 रूपम् दिद्युत् योतरिक्षे
 वैश्वा नरः सहसावाम् अमृत्यो
 मधमन मारूहतु दस्म विक्षाम्

गाइत्री छंद वाला मंत्र :

अक्रमिष्ट भुवनेषु ब्राहमणाहम् वितूर्यतः

प्रवरोतास्मि विप्रः

गणपति मुनिवर ने ऋग्वेद से शत्रुविनाश, रोग निदान संबंधी मंत्रों को चुनकर उन को पद्य रूप देकर अर्थ को समझाया है । मुनिवर जी इस कार्य में मग्न थे । सन् 1934 के प्रारंभ में अपने पुत्र महादेव शास्त्री के बुलाने पर कलुवराई को आये ।

जब मुनिवर जी अरूणाचलम में रह कर अध्यात्मिक साधना में डूबे हुए थे तब वे गणपति के समान दिखाई देते थे । सिसी और गोकर्ण में गणपति मुनिवर जी वेद ऋषियों के जैसे दिखाई देते थे । उन के शिष्यों में दैवरत सब में प्रमुख थे । वे एक उदाम पंडित थे । इतना ही नहीं वे पहुँचे हुए साधक भी थे । उन के भाई सीताराम भारती मुनिवर जी के परम भक्त थे । विश्वमित्र और सुन्दर पंडित ने मुनिवर जी की रचनाओं को प्रकाशित किया था और कपालिशस्त्री ने इनके भाष्य को ।

पुंडरीक राया जी के निस्वार्थ मित्रत्व की मुनिवर जी सदा स्मरण किया करते थे । गणपति मुनिवर जी के शिष्य कपालि शास्त्री का आप्त जन माधव पंडित आज पाडिच्चेरी के अरविन्दाश्रम में प्रसिद्ध हुए हैं ।

XLIV विश्वविद्याय के भाषण :

सिसी से कलुवराई, तिरूवण्णामलै द्वारा जाना मुनिवर जी चाहते थे । भगवान रमण महर्षि जी का दर्शन कर वे कलुवराई जाना चाहते थे । पर उन की इच्छा पूरी नहीं हुई । यात्रा की थकावट और धूप की तीव्रता उन के लिए असहनीय बन गया था । इसलिए सीधा वे कलुवराई पहुँच गये और थोड़े दिनों के लिए वहाँ वे आराम करने लगे ।

आंध्र विश्व विद्यालय में भाषण देने के लिए निमंत्रण उन तक पहुँच चुका था । उस समय डा. सर्वेपल्लि राधाकृष्णन आंध्र विश्व विद्यालय के उप कुलपति थे । वे गणपति मुनिवर जी का नाम तो सुन चुके थे । पर भेंट करने का अवकाश उन को अब तक प्राप्त नहीं हुआ था । डा. राधाकृष्णन के ताऊ श्री सर्वेपल्लि नरसिंहय्या गणपति मुनिवर के शिष्य थे । फिर भी डा. सर्वेपल्लि राधाकृष्णन को गणपति मुनिवर जी से मिलने का अवसर नहीं मिला था ।

आंध्र विश्व विद्यालय में महाभारत पर दो विद्वत्पूर्ण भाषणों को मुनिवर जी ने दिया था । इस बात को समझाते हुए कि महाभारत वेदों का एक अविभाज्य अंग है मुनिवर जी ने वेदकाल के जन जीवन, संस्कृति, धर्म आदि को विस्तार पूर्वक समझाया था । मुनिवर जी की विद्वत्ता, भाषा प्रौढिमा, प्रमाणित करने का ढंग आदि आदि को देखकर विश्व विद्यालय के पंडित आश्चर्य चकित हुए थे । मुनिवर जी ने अपने भाषणों में इस बात पर जोर दिया था कि वेदों के ज्ञान के बिना देश के धर्म और संस्कृति को हम समझ नहीं सकेंगे । देखने में गणपति मुनिवर जी प्राचीन काल के ऋषि मुनियों के बराबर अर्थात् देखने में वे परंपरा वादी दिखायी दे रहे थे । पर उन के निचार एक दम प्रगतिशील थे । डा. सर्वेपल्लि राधाकृष्णन ने सुझाव दिया कि विश्वविद्यालय का पूर्वी विभाग मुनिवर जी के नेतृत्व में शोध कार्य करें । इस बीच मुनिवर जी को कलकत्ता विश्व विद्यालय से भी आह्वान मिला था । मुनिवर जी केवल तपस्या को अधिक महत्व देते थे । इसलिए कलकत्ता विश्व विद्यालय के निमंत्रण को उन्होंने स्वीकारा नहीं ।

कलुवराई में आराम से रहने के लिए गणपति मुनिवर जी का पुत्र महादेव शास्त्री पासवाले एक आम के बगीचे में प्रबंध कर रहे थे । इस बीच गणपति मुनिवर जी को खरगपुर जाना पड़ा । उन के नातेदार नौकरी के लिए वहाँ जाकर बस गये थे । महादेव

शास्त्री के लिए एक नौकरी दिलाने के सिलसिले में उन्होंने गणपति मुनिवर जी से अनुरोध किया कि खरगपुर चले आये । अपने नये आवास में प्रवेश करने के लिए मुनिवर जी रेल में यात्रा कर रहे थे । खरगपुर माँ दुर्गा का आवास स्थान है । पहले वहाँ एक घना जंगल था । वहीं अब एक बहुत बड़े स्टेशन का निर्माण हुआ है । खरगपुर में मुनिवर जी ने एक दो भाषण दिये । वहाँ के लोगो ने गणपति मुनिवर जी के बारे में सोचा कि ये एक साधारण ज्योतिषी है ।

कुछ दिनों के बाद अर्थात् सन् 1934 के नवंबर महीने के 24 वे तारीख को अपने शिष्यों की प्रार्थना को स्वीकार कर गणपति मुनिवर जी कलकत्ता पहुँचे ।

XLV कलकत्ता अवस्थान :

खरगपुर में कइयों ने गणपति मुनिवर से भेंट किया था । उन में एक व्यक्ति थे नेमानि सूर्य नारायणा (NemaniSuryānārāyaṇa) । ये कलकत्ता में रेलवे की नौकर कर रहे थे । अध्यात्मिक साधनाओं के बारे में सूर्य नारायण जी गणपति मुनिवर से प्रश्न किया करते थे । गणपति मुनिवर जी के उत्तरों को सुनकर वे उन से बहुत प्रभावित हुए थे । कलकत्ता पधारने और वहाँ के साधकों को मार्ग दर्शन करने के लिए सूर्य नारायण जी ने गणपति मुनिवर जी से प्रार्थना की । उस प्रार्थना के अनुसार सूर्यनारायणाजी के अतिथि बन कर मुनिवर जी कलकत्ता आये । सूर्य नारायणा के घर में उन के मित्र गुंटूर लक्ष्मीकांतम् भी (GunturLakshmiKantham) अतिथि के रूप में थे । लक्ष्मीकांतम् जी की पत्नी सूरम्मा (Sooramma) एक सनातन परिवार की स्त्री थी । अपने पालन पोषण के कारण वे अतिथि सत्कार को, बड़ों की सेवा को बहुत अच्छी तरह से जानती थी । वे चाहती थी कि जब तक मुनिवर

जी कलकत्ते में रहेंगे तब तक वे उन्हीं के अतिथि बन कर रहे । लक्ष्मीकांतम ने एक बार मुनिवर जी को अपने सपने में देखा था । उस सपने का विवरण इस प्रकार दिया जा सकता है । कैलास पर्वत के गंगोत्री के पास खड़े हो कर लक्ष्मीकांतम् सूर्य भगवान को अर्घ्य दे रहे थे । उस समय उन्होंने कैलास पर्वत के शिखर पर बैठ कर तप करने वाले एक ऋषि को देखा । उस ऋषि जी के मुखारविंद की छाप लक्ष्मीकांतम के हृदय पर लग गयी थी । उनको लगा कि जिस तपस्वी को उन्होंने अपने स्वप्न में देखा था वे ही आज मानो उन के यहाँ अतिथि बन कर आये हैं । स्वप्न वाले तपस्वी को गणपति मुनिवर जी के रूप में अपने यहाँ आया देखकर लक्ष्मीकांतम् जी अचंभे में डूब गये ।

कलकत्ता की आंध्र पाठशाला में हर शाम को मुनिवर जी साधकों को संबोधित कर भाषण दिया करते थे । एक बार लक्ष्मीकांतम ने मुनिवर जी से अवतारों के बारे में प्रश्न किया । उनका प्रश्न इस प्रकार था : अपने कर्म के कारण ही मानव का जन्म इस धरती पर होता है । अवतार पुरुष तो कर्मातीत होते हैं । अगर बात यही है तो ये अवतार पुरुष क्यों जन्म लेते हैं ? ” मुनिवर जी का उत्तर इस प्रकार है । अवतार दो प्रकार के होते हैं । यज्ञ फल के कारण एक प्रकार के अवतार पुरुष जन्म लेते हैं । दैवकृपा के कारण दूसरे प्रकार के अवतार पुरुष जन्म लेते हैं । इनके पास दैवीशक्ति और तेज रहता है । अवतार का मुख्य उद्देश्य जगदोद्धार या जगत् कल्याण है । इनमें दैवीशक्तियाँ बिना प्रयत्न के प्रकट होती हैं । अध्यात्मिक क्षेत्र में इन लोगों की साधना महत्वपूर्ण होती है । सांसारिक कार्यों में वे लोग दूसरों की तरह ही रहते हैं । अवतार पुरुष जो होते हैं वे ‘मैं मेरा, तू तेरा’ भाव को जीतने वाले होते हैं । उन में ‘अहम्’ की

मात्रा नाम मात्र के लिए भी नहीं रहती । वे अपने कार्यों को भगवदर्पित करते हैं । भगवदर्पण इस का मनोधर्म होता है ।” वेदकालीन सामाजिक नियम, जन जीवन, धर्म आदि को पुनरुज्जीवित करने की आवश्यकता के बारे में गणपति मुनिवर जी बारबार भाषण दिया करते थे । वे इन्हीं बातों पर अधिक जोर भी दिया करते थे ।

कलकत्ता के भाषणों का मुख्य उद्देश्य कलकत्ता वासियों को भगवान् रमण महर्षि से, उन के जीवन से, उनके दर्शन से और उन के उपदेशों से परिचय करवाना । समाज के हर एक वर्ग को मुनिवर जी के भाषण आकर्षित कर सके । वे साधकों से कहा करते थे कि साधकों को नियम से जपतप करना है ।

मुनिवर जी के आवास और आहार की व्यवस्था शिष्य लोग किया करते थे । अधिक खट्टे, अधिक मीठे या अधिक आम्ल वाले पदार्थों को (व्यजनों को) मुनिवर जी पसंद नहीं करते थे । दूध, अन्न, दाल, फल तरकारी आदि वे पसंद करते थे । स्वास्थ्य की दृष्टि से अपने खान पान पर वे ज्यादा जागरूकता दर्शाते थे । शिष्य वर्ग प्रीति से जो मृष्टान्न देते थे उसे वे पसंद नहीं करते थे ।

लक्ष्मीकांतम् के घर के पास मुनिवर जी के ठहरने का प्रबंध किया गया था । उन का स्वास्थ्य बहुत नाजूक था । फिर भी अपने शरीर में संचार करने वाली कुंडलिनी शक्ति के कारण वे सब को सह लेते थे ।

गणपति मुनिवर जी बच्चों को बहुत प्यार करते थे । सूरम्मा (श्री लक्ष्मीकांतम् की धर्म पत्नी) भोजन तैयार कर अपनी बहन सुब्बलक्ष्मी (जो आठवर्ष की कन्या थी) के द्वारा उन के आवास स्थान भेजा करती थी । भोजन परोस ने के पहले वह लडकी व्यजनों की रुचि लेती थी । फलों को पहले चखकर, शबरी

जैसे, बाद में मुनिवर जी को दिया करती थी । इन कार्यों को भक्ति के साथ सुब्बलक्ष्मी किया करती थी । पर उस के इस कार्य को सूरम्मा पसंद नहीं करती थी । इस लिए अपनी बहन का बुरा-भला कहा करती थी । पर गणपति मुनिवर जी इस का बुरा न मानकर कहा करते थे कि यह तो एक बच्चों का खेल है । वे सुब्बलक्ष्मी को प्यार से चल्लायम्मा राव (Challayamma Rao) कहा करते थे ।

(तेलुगु में शीतलता या छांछ को चल्ला कहते हैं । उन दिनों में बड़े घरों की स्त्रियों को ही राव कहा करते थे ।)

सरल उपमानों और कहानियों के द्वारा मुनिवर जी आध्यात्मिक सत्यों का निरूपण किया करते थे । उन की स्मरण शक्ति एक दम अद्भुत थी । हर पढी हुई पुस्तक की हर बात को वे याद रखते थे । अपने भ्रमण में वे कई प्रांतों को जा चुके थे, कइयों से उन का सक्रिय संपर्क था । जिज्ञासु साधकों के मन को सुधार कर, जागृत करने के बाद वे उन को अपना उपदेश दिया करते थे । शिष्यों के मन में उठने वाले बुरे विचारों को, उनकी बुरी आदतों को यों ही दूर कर देते थे । लक्ष्मीकांतम् और सूरम्मा तो मुनिवर जी के अति अनुग्रह के पात्र बन गये थे । सूरम्मा को अपनी पुत्री जानकर मुनिवर जी ने उन को गाइत्री मंत्र दीक्षा बद्ध किया था ।

गणपति मुनिवर जी बीस दिनों के लिए तपस्या करना चाहते थे । इस संबंध में रेणुका देवी जी की आज्ञा की राह देखने लग गये थे । इस तप के बल पर अपने सूक्ष्म शरीर पर वे नियंत्रण पाना चाहते थे । वे शिष्यों के मानसिक स्तर को जानकार तदनुसार उपदेश दिया करते थे । एक बार उन्होंने कहा : उत्तम आहार को लो अपने स्वास्थ्य की रक्षा करो । हर काल में मानसिक शांति को बनाये रखो । अपनी शारीरिक शक्ति का उपयोग अध्यात्मिक साधना के लिए करो । इसे कहते हैं यथा शिष्य तथा उपदेश ।

XLVI मुनिवर जी के विचारपूर्ण प्रवचन :

सन् 1935 के आगस्त महीने की बात है । गणपति मुनिवर जी कलकत्ता में ही थे । उन को एक दिन खरगपुर शीघ्र आने के लिए, समाचार मिला । खरगपुर के फैलाव (Extension) नीमापुर (Neemapur) में, गणपति मुनिवरजी के शिष्यों ने लिखा था, एक आश्रम की स्थापना के लिए पूरा प्रबंध हुआ है । आगामी गणेश चतुर्थि के दिन संपन्न होने वाली पूजा में भाग लेने के लिए उन्हें वहाँ बुलाया गया था । शिष्य चाहते थे कि मुनिवरजी जल्दी से जल्दी खरगपुर पहुँचे । अपने शिष्यों के आग्रह को न टाल सकने के कारण मुनिवर जी कलकत्ता छोड़ खरगपुर पहुँचे । पर आश्रम का प्रबंध वैसा नहीं हो पाया था जैसा कि सबने चाहा था ।

गणेशोत्सव धूम धाम के साथ संपन्न हुआ । पर वहाँ पूजारियों से एक गलती हो बैठी । गणेश की मूर्ति की स्थापना के संबंध में कहे जाने वाले मंत्रों के साथ साथ अभ्यास के कारण मूर्ति के विसर्जन संबंधी मंत्रों का भी वहाँ के पुरोहितों ने उच्चरित किया । निमंत्रित लोगों ने इस की टीका टिप्पणि की । इस घटना के बाद अपने पौत्र के नाम करण के लिए गणपति मुनिवर जी कलुवराई पहुँचे । वहाँ एक अद्भुत घटना घटी । अपनी हथेली में एक ताम्र के सिक्के को रखकर अपने नाते दारों से वे बातचीत कर रहे थे । कुछ समय के बाद उन के हाथ को पीडा होने लगी थी । सारा शरीर कांपने लगा था । पसीना बहने लग गया था । जब उन्होंने अपनी मुट्ठी को खोला तो सब ने एक अद्भुत को देखा । हाथ का सिक्का (जो ताम्र का था) सोने का सिक्का बन गया था । मुनिवर जी ने अनुमान लगाया कि यह शायद उन की तपः शक्ति के कारण हुआ होगा । इस से न संतुष्ट होकर तप की अंतिम सिद्धि पाने का निर्णय उन्होंने लिया । तमिलनाडू के आरणि (Arani) से मुनिवर जी का शिष्य

किट्टाजी (Kittaji) आया हुआ था । उन को लगा कि गणपति मुनिवर जी अति शीघ्र अपनी अंतिम सिद्धि को पायेगे ।

इन्हीं दिनों में राबाड महादेवम (Rabada Mahadevam) नामक एक स्वयं सेवक गणपति मुनिवर जी की सेवा सुश्रूषा करने के लिए आगे बढ़ा । ये एक ब्रह्मचारी थे और गांधीजी के आश्रम में एक स्वयंसेवक के रूप में रह चुके थे । कलुवराई से ये खरगपुर मुनिवर जी के साथ आये थे और अपने सेवा कार्य में लग गये थे । सन् 1935 के सेप्टम्बर महीने के अंत तक आश्रम के शिलान्यास का काम पूरा हो गया था । खरगपुर और कलकत्ता के कई शिष्यों ने इस शिलान्यास में भाग लिया था । इन्होंने अपनी आंखों से ताम्र के एक दो सिक्के को सोने के सिक्के के रूप में परिणत होते देखा था । इसे देख वे लोग तो आवक रह गये थे । इन सिक्कों को दूर रखने के लिए मुनिवर जी ने कहा था ।

खरगपुर से कलकत्ता लौट आने पर उन के दर्शन के लिए दूर दूर से उन के शिष्य आने लगे थे । गुरु शिष्यों के समागम को देख कर कलकत्ता के शिष्यों ने अत्यंत आनंद का अनुभव किया । अपने शिष्यों के प्रति गणपति मुनिवर जी के मन में पितृ वात्सल्य था । उन पर कृपा करना मुनिवर जी का स्वभाव था । अपने मृदुभाषण और प्रेमानुकंपा से भरे बर्ताव से अपने शिष्यों के हृदयों को गणपति मुनिवर ने जीता था ।

भेट के लिए बाहर से जो शिष्य आये थे उनमें पांडिच्चेरी के शिष्य सुधन्व भी थे । इन्होंने मुनिवर जी की काव्य रचना प्रतिभा और साधनाओं के बारे में कलकत्ता के शिष्यों को परिचय करवाया । इस के बाद काकिनाडा (Kakinada) से शेषु अय्यर (Seshu Iyyar) नामक एक शिष्य आये । उन्होंने भगवान रमण महर्षि से संबंधित चंद बातें कही । भगवान रमण महर्षि के नाम

को सुनते ही वे अत्यंत पुलकित हुए और उन की आंखों से आनंदाश्रु बहने लग गये थे । उन के सिर में जहाँ कपाल भेद हुआ था वहाँ बिजली सम शक्ति बहने लग गयी थी । उस समय आस पास जितनी भी जड़ वस्तुएं थी वे एक दम चेतन बन गयी । शेषु अय्यर से गणपति मुनिवर ने तब इस प्रकार कहा था : मेरे शरीर की शक्ति भगवान की सेवा के लिये अर्पित है ।

गणपति मुनिवर जी अपने भाषणों में महाभारत की विशेषताओं पर विशेष जोर देकर समझाते थे । उन का कहना था : महाभारत समाज के हर एक वर्ग के लिए मार्ग दर्शन कराने वाला दीपस्तंभ है । गणपति मुनिवर जी की लेखिनी में अपनी एक विशेष सुन्दरता और सरलता को लोगों ने देखा था । उन को देखने पर लगता था मानो वे कहीं देख रहे हैं पर उन की लेखिनी उस अवस्था में भी अबाध गति से चला करती थी । उनके शरीर में एक दिव्य तेज आकर बस गया था । ऐसे विरले ही थे जिन्होंने गणपति मुनिवर जी के मंदहास, मृदु भाषण अनुकंपा आदि आदि का परिचय न पाया हो । जगदंबा का अनुग्रह उन में प्रति बिंबित हो रहा था ।

गणपति मुनिवर जी का विचार था कि भगवान के प्रति जप तप ही वे साधन हैं जिन के द्वारा हमारी आशायेँ, हमारी आकांक्षायेँ पूरी हो सकती हैं । वे यह भी कहा करते थे कि इन साधनाओं के लिए हमें विशेष रूप से विशेष प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं । पूजा, जप, ध्यान आदि को हमें कभी नहीं छोड़ना है । इस का मतलब यह नहीं कि अपने कर्तव्यों के पालन में ही हमें अपने जीवन के सारे समय को व्यतीत करना है । भक्ति हमारी इच्छाओं को पूरा कर सकती है । पर मन को जब ऊँचे सोपान पर मग्न कर किसी भी वस्तु की कामना नहीं करे तो हमें उन्नत स्थिति पर वह (भक्ति) ला सकती है । अपनी साधना को जब मुनिवर ने प्रारंभ किया था तब जगत कल्याण के लिए

कुछ न कुछ करने की इच्छा गणपति मुनिवर जी के मन में थी । कपाल भेद के बाद उन के जीवन का रूख ही बदल गया । वे सबमें अनासक्ति को प्रकट करने लग गये थे ।

वेदों का अनुशीलन काफी गहराई के साथ गणपति मुनिवर जी ने किया था । अपने शोध के द्वारा उन्होंने जाना कि इस संसार में दो युग है । ज्योतिर्युग और धर्म युग । ज्योतिर्युग की गणना करना ज्योतिषी जानते हैं । धर्मयुग लोगों के गुण और चरित्र पर निर्भर रहता है । कृत अथवा सत्य युग की अवधि 1200 वर्ष है । इस युग में साधारण व्यक्ति भी निर्गुण ब्रह्म की उपासना करने की शक्ति रखता है । कृत युग के समाप्त होने के 50 वर्ष बाद त्रेतायुग आरंभ होता है । यह 2400 वर्षों वाला काल है । इस युग के लोग साकार ब्रह्म के उपासक होते हैं । ' त्रेता ' अथवा ' त्रयी ' शब्द अग्नि का पर्यायवाची शब्द है । इस युग में सौर, विद्युत और पार्थिव ऊर्जायें हैं । त्रेतायुग के समाप्ति के एक सौ वर्षों के बाद द्वापर युग आरंभ होता है । यह युग 3600 वर्षों तक चलता है । द्वापर अर्थात् द्वै-पर में मानव भगवान को अपने से अलग कर दूर रखता है । इस के प्रभाव के कारण वह एक को दो मानने के गुण को अपनाता है । द्वापर के 150 वर्षों के बाद कलियुग अथवा कलह युग शुरू होता है । यह युग 5000 सालों तक चलता है । वेदों का कहना है कि कलि युग अभी अभी शुरू हुआ है । पर गणपति मुनिवर जी के शोध के अनुसार कलियुग समाप्त हो गया है और कृत युग प्रारंभ होने के पहले का काल चल रहा है ।

गणपति मुनिवर जी का विचार था कि हम वेद रहस्यों को जानने में असमर्थ हैं । इस लिए अब यहाँ इतनी शाखायें चल पड़ी हैं और इतने वर्ग आ गये हैं । अगर शैव, वैष्णव, शाक्त कपालिक, सांख्य, नैयायिक आदि आदि लोग आपस में झगड़ रहे हैं तो इस का कारण एक ही है । हमें वेदों का सही ज्ञान

नहीं है । परंपरा पालन और प्राचीन आचार विचारों से बंधे रहना -कुछ लोग समझते हैं वेदाध्ययन है । वेद धर्म में इनके लिए स्थान अवश्य है पर वे ही मुख्य नहीं है । शाखोपशाखाओं में बंटकर जो वेद धर्म रोगग्रस्त हुआ था, जो अर्थ रहित आचार विचार घनीभूत हो गये थे उन की ओर उंगली उठाते हुए समाज को सही मार्ग पर लाने का श्रेय, गणपति मुनिवर के अनुसार, गौतम बुद्ध को मिलना चाहिए ।

गणपति मुनिवर के शिष्य, विशेषकर लक्ष्मीकांतम चाहते थे कि वे अपनी आत्मकथा को लिखे ताकि अध्यात्मिक ज्ञान पिपासुओं को मार्ग दर्शन मिले । इस विषय में सब मिलकर मुनिवर जी पर दबाव भी ला रहे थे । कुछ शिष्यों ने विश्वमीमांसा के श्लोकों के विवरण को लिखने के लिए भी उन से अनुरोध किया । इस अनुरोध के अनुसार कम समय में गणपति मुनिवर ने विश्व मामांसा के अर्थ को लिखा । अपने उपन्यास 'पूर्ण' का अधिक तम भाग को भी वे पूरा कर चुके थे । आत्म कथा के एक अंश को भी उन्होंने पूरा किया था । शिष्यों के आग्रह पर सन् 1936 के अप्रैल महीने के 25 तारीख को कलकत्ता छोड खरगपुर जाना पडा ।

XLVII निर्याण :

अपने गुरुजी से अलग होकर जीना कलकत्ता के शिष्यों के लिए एक कठिन परीक्षा बन गयी थी । सब के सब गणपति मुनिवर जी को आत्मीयता के साथ नायना (तेलुगु में पिताजी को नायना कहते हैं) कहकर बुलाते थे । वे न केवल पितृ समान थे पर शिष्यों के आराध्य देवता भी थे । ऋग्वेद में परमात्मा को पिता, पित्रानाम् सखा नामों से संबंधित करते हैं । शांत सुनहरे रंग को झरने वाला देह, प्रेम पूर्ण मंदहास, सदा अनुकंपा और वात्सल्य को बरसाने वाले नेत्र आदि आदि शिष्यों को उन की

ओर आकृष्ट किया करते थे । सांसारिक बंधन और रागद्वेषों से मुक्त गणपति मुनिवर जी सदा हर्ष के साथ रहते थे । वेदों की महत्ता को बखारने में वे सदा उत्सुक रहते थे । इन की कथनी और करनी में अभेद था । वैदिक विधियों का पालन स्त्रियाँ कर सकती हैं कहने वाले गणपति अपनी पत्नी को होम करने के लिए अनुमति दिया करते थे । छुआछूत जैसे समाजिक दुराचार का तीव्र खण्डन इन्होंने किया था । समाज सुधार के मामलों में गणपति मुनिवर जी एक प्रगतिशील व्यक्ति थे । वेदों की प्रगतिशीलता को वे जीर्ण कर चुके थे ।

इन का खरगपुर वाला आश्रम एक सीदा सादा आश्रम था । सूखे घास के छप्परवाले दो कमरे थे । सोमयाजुल सूर्यनारायण (Somayajula Suryanarayana) जी मुनिवर जी के खान-पान की देख भाल किया करते थे । कलुवराइ से सिंहलु (Sinhalu) नामक व्यक्ति आ गुरुवरजी की सेवा में लग गया था । हर शनिवार के दिन आश्रम भक्तों से भर जाता था । पहले मुनिवर जी होम करवाते थे और तदनंतर थोड़े समय के लिए भक्तों के संग बातचीत किया करते थे । क्योंकि शिष्य पास नहीं बहुत दूर रहते थे, मुनिवर जी के पास रहकर उन की आवश्यकताओं पर इतना ध्यान दे नहीं पाते थे । इस कारण से मुनिवर जी के भोजन का प्रबंध ठीक तरह से हो नहीं पाया था । परिणाम स्वरूप उन का स्वास्थ्य बिगडने लगा था । तिस पर इन को मधुमेह का रोग था । उन के शरीर पर एक फोडा निकल आया था । कुछ दिनों के बाद सब कुछ ठीक हो गया था । इस बीच माणिक्यम् नामक एक ज्योतिषी आये । उन्होंने मुनिवर जी की जन्म कुण्डली जांची । गुरुवर के जन्म स्थान पर दुष्ट ग्रहों को देखकर वे ताड गये थे कि गणपति मुनिवर मृत्यु द्वार के समीप है । इस बात को बताये बिना वे वहाँ से चले गये थे ।

सन् 1936 के जूलै महीने के 21 तारीख को मुनिवर जी की स्थिति चिंता जनक बन गयी थी । वे बहुत बलहीन बन गये थे । बिस्तर छोड़कर उठने की शक्ति भी उन में नहीं थी । न वे पी सके और न ही खा सके । 23.7.1936 तारीख को मुनिवर जी के डूबते हुए स्वास्थ्य के बारे में कलकत्ता तिरूवण्णामलै और कलुवराइ को तार भेजे गये । कलकत्ता से लक्ष्मीकांतम् और उन की पत्नी सूरम्मा आये । मुनिवर जी के पास बोलने की शक्ति भी नहीं थी । सेब का रस पीने के बाद अपने आप को वे संभल पाये । उस दिन को, मध्याह्न से ही मूसलधार वर्षा होने लगी थी । छत से पानी टप टप कर गिरने लगा था । पर जहाँ मुनिवर जी सोए हुए थे वहाँ पानी नहीं आ रहा था । इस परिस्थिति को देखकर शिष्य लक्ष्मीकांतम् ने हाथ जोड़कर गणपति मुनिवर जी से या शिष्य पार्वतीशम् के घर जाने या कलकत्ता आने के लिए प्रार्थना की । मुनिवर ने जवाब दिया कि दूसरे दिन ढाई बजे के आस पास चलेगे ।

शाम को डाक्टर आश्रम आये । डाक्टरी जांच के बाद उन्होंने कहा अब घबराने की कोई बात नहीं । ठीक इसी समय पर तिरूवण्णामलै से तार आया । तार में बताया गया था कि भगवान रमण महर्षि मुनिवर जी के स्वास्थ्य के बारे में जानकर मौन धारण कर चुके हैं ।

जूलै महीने के 25 तारीख (सन् 1936) तक सब को लगा मुनिवर जी का स्वास्थ्य सुधर गया है । चिंता की कोई बात नहीं थी । सुबह का होम पूरा हुआ था । उस होम में मुनिवर जी ने भाग लिया । तदनंदर लेट कर नेत्रों को उन्होंने मूंद लिया । लक्ष्मीकांतम् उन की पत्नी सूरम्मा, मुनिवर जी के पुत्र महादेव शस्त्री सब उन के सिरहाने बैठे हुए थे । महादेव शास्त्री ने अपने पिता से पूछा ' मुझे आगे क्या करना है ' । जप, तप और ध्यान में समय को व्यतीत करने के लिए क्षीण स्वर में मुनिवर जी

ने जवाब दिया । ढाई बजे के आस पास गणपति मुनिवर जी का सांस बंद हो गया । उस दिन तिरूवण्णामलै में एक भीषण मौन छा गया था । संध्या समय गणपति मुनिवर जी के निर्याण का समाचार तार द्वारा रमण महर्षि को मिला । तब तिरूवण्णामलै में वेद पारायण हो रहा था । तार को देखकर रमण महर्षि ने कहा था : तो क्या मुनिवर जी चले गये । थोड़ी देर के बाद उन्होंने फिर कहा : वे कहाँ जायेंगे ? तदनंतर उन की आंखों में पानी भर आया था । आंसू बहाते हुए उन्होंने कहा था : इस तरह के व्यक्ति को हम कहाँ पायेंगे । उन की आंखों से आंसू बहते ही रह गये थे ।

XLVIII उपसंहार :

बहुत दिनों तक बहुत भावुक बनकर गणपति मुनिवर जी के जीवन की अनेक घटनाओं को याद कर रमण महर्षि अपने शिष्यों से कहा करते थे । गणपति मुनिवर जी की मृत्यु असामयिक थी । जब उनका निधन हुआ था तब उन की आयु मात्र 58 वर्षों की थी । आंध्र विश्व विद्यालय के आचार्य महदेवन और उनकी पत्नी दोनों गणपति मुनिवर जी के शिष्य थे । जिस दिन गणपति मुनिवर ने देह त्याग किया था उस दिन रात को आचार्य महदेवन ने एक सपना देखा था । उन्होंने, देखा एक जलती हुई चिता से प्रकाशमय मुनिवर जी का देह उठ कर कहीं जा रहा है । दूसरे दिन उन्होंने निधन समाचार को सुना था । इस प्रकार का अनुभव गणपति मुनिवर जी के अनेक शिष्यों को हुआ था ।

गणपति मुनिवर अपने शरीर का त्याग कर चले गये थे । पर वे अपने पीछे एक अमूल्य संपत्ति को छोड़ गये हैं । यह संपत्ति तो उन की रचनाये हैं । वैदिक संस्कृति को आधार बनाकर लिखे गये काव्यों की रचना गोकर्ण, कुलुवे, सिसी, आनंदाश्रम, तिरूवण्णामलै कलकत्ता आदि आदि स्थानों में रहते समय की थी ।

उन की रचनाये प्रकाशित हुई हैं तो इस का श्रेय उन के शिष्य लक्ष्मीकांतम को मिलना चाहिए । गणपति मुनिवर जी के निधन के बाद रमण महर्षिजी के दर्शन के लिए लक्ष्मीकांतम अपनी पत्नी सूरम्मा समेत आये । गणपति मुनिवर जी के पुत्र महादेव शास्त्री और मुनिवर जी के भाई के पुत्र नरसिंह शास्त्री भी उस समय वहीं थे । रमण महर्षि जी की सन्निधि में रहकर नरसिंह शास्त्री ' उमा सहस्रम् ' की एक प्रति तैयार कर रहे थे । रमण महर्षि ने नरसिंह शास्त्री से पूछा : ' नरसिंह कितने श्लोकों को नकल कर चुके हो ? ' जवाब में नरसिंह शास्त्री ने कहा : 96 श्लोकों को कर चुका हूँ । 96वें श्लोक के बाद, आगे के तीन श्लोकों को पढ़ने के लिए रमण महर्षि ने नरसिंह शास्त्री से कहा । वे श्लोक इस प्रकार हैं :

चित्तम् अनियो वित्तम्
 य इदम् मूल्ये प्रपंच तादप्यधिकम्
 हृदय गुहायाम् निहितम्
 जानि तेस विजहाति बहिरासः
 अप्राप्त मूर्धानाम्
 हृदयात् संप्रतिष्ठा धृतानाद्य
 तद्गु चिरूक्ता बुद्धिस
 त्वइनिष्ठा भवति देवि तनिष्ठा
 अन्न मयाणुम् प्राप्तम्
 धि ज्योतिश्चंद्रमार्कम् इनतेजः
 परिभाष्यते महेश्वरि
 मन इति संकल्प संभव स्थानम्

इन श्लोकों का अर्थ इस प्रकार है : जो अपने मन को अर्थात् अपनी साफ बुद्धि को पूरे विश्व से महान मान कर अपने हृदय में उसे सब से अमूल्य मान कर संग्रहीत करते हैं वे दूसरी आशाओं को तज देते हैं ।

हे माते तुम्हारे अप्रतिम प्रभा हृदय से निकलकर सर तक नहीं पहुँच पायी है । बीच वाली अमृत नाडी में प्रवेश करती है । इसे बुद्धि कहते हैं । बुद्धि में अगर बस जाय तो ऐसा लगता है तुम्हीं में बस गया है ।

हे महेश्वरी, चन्द्र का प्रकाश सूर्य प्रभा का प्रतिबिम्ब है । सिर तक पहुँचने वाली बुद्धि का प्रतिबिम्ब ही सब चिंतनों का मूल मन कहलाता है ।

इस श्लोकों के पठन के बाद रमण महर्षि ने नरसिंह शास्त्री से पूछा क्या इन श्लोकों का अर्थ स्पष्ट हुआ है ? नरसिंह शास्त्री ने कहा : ऐसे तो लगता है अर्थ स्पष्ट है पर उनका अंतरार्थ समझ में नहीं आ रहा है । रमण महर्षि ने तुरंत कहा : तो क्या प्रत्येक श्लोक के दो दो अर्थ हैं ? गणपति मुनिवर जी तो क्लिष्ट और अस्पष्ट विषयों को सरल बनाकर बताने में निपुण हैं । आप तो खुद पंडित हैं । क्या इन के अर्थ को आप समझ नहीं रहे हैं ? इस कथन के बाद उन के अर्थों को खुद रमण महर्षि ने समझाया ।

“ गणपति मुनिवर जी सब से पहले चित्त के स्वभाव को बताकर साधना के द्वारा जिन जिन अनुभवों को वे भोग चुके हैं उन का वर्णन करते हैं । हृदय से सिर तक चलने वाली प्रभा इन्द्रियों के प्रभाव के कारण अगर बाह्य संसार के विषयों में फंस भी जाये तो भी अमृतनाडी में उस के चलन को नियंत्रित करने वाले महापुरुषों को उसका शुद्ध रूप अनुभव में आता है । हृदय में वास करने वाली शुद्ध बुद्धि और इस प्रभा में कोई अंतर नहीं है । मन और बुद्धि का सूक्ष्म भाग चित्त है । चित्त आकाश और चिदाकाश में कोई भेद न रहने के कारण ही वे दोनों एक बन गये हैं । प्राणियों के अस्तित्व का और इस संसार का आधार हृदय है । प्राणियों के हर एक ज्ञान कर्म के लिए मूलस्थान हृदय

है । हृदय छाती के दक्षिण भाग में रहने वाला एक सूक्ष्म केन्द्र है । इन सब का अनुभव करना ही पड़ता है । कोई मार्गांतर नहीं है । ”

रमण महर्षि जी उस दिन गिरि प्रदक्षिणा के लिए तैयार हुए । कलकत्ता से आयी हुई सूरम्मा को पांवों में मोच आ गया था । उन से चला नहीं जा रहा था । इस लिये एक घोड़ा गाड़ी (दक्षिण में इसे जटका कहते हैं) में बैठकर प्रदक्षिणा करने का विचार था उनका । पर रमण महर्षि को यह योजना अच्छी नहीं लगी । लक्ष्मीकांतम और सूरम्मा पैदल ही चल पड़े । मोच की पीड़ा एक दम गायब हो गयी थी । उन को लगा आगे आगे चलने वाले रमण महर्षि जी इन्हें बुला रहे हैं । प्रदक्षिणा के बाद सूरम्मा ने हाथ जोड़कर रमण महर्षि जी के फेरे लगाये । सूरम्मा का विश्वास था कि रमण महर्षि जी के फेरे लगाने का अर्थ पूरे विश्व की प्रदक्षिणा करने के समान है ।

गणपति मुनिवर जी की सभी रचनाओं को प्रकाशित कराने की इच्छा से रमण महर्षि जी से लक्ष्मीकांतम जी ने अनुमति मांगी ।

रमण महर्षि ने उन पर अपने कृपा कटाक्ष का प्रसारण किया । उन्होंने आशीश देते हुए कहा कि शीघ्र ही गणपति मुनिवर जी की सभी रचनायें प्रकाशित होंगी । रमण महर्षि जी के आदेशानुसार लक्ष्मीकांतम ने गणपति मुनिवर की जीवनी तेलुगु में लिखकर उसे ‘ नायना ’ नाम दिया ।

जयतु भारत क्षोणी खण्डम्
विषाद विवर्जितम्
जयतु गणपस्तस्य क्षेमम्
विधातु मना मनिः ।

जयतु रमणस्तास्य आचार्यो
महर्षि कुलाचलो
जयतु च तयोर्मातापिता
महेश विलासिनि

परिशिष्टः

काव्य कंठ गणपति मुनिवर 'नायना' जी मूलतः तपस्वी हैं । साहित्य रचना उन की तपस्या का एक अंग मात्र है । साहित्य क्षेत्र में ख्याति पाना उनका उद्देश्य कदापि नहीं था । उन की कृतियाँ एक नहीं अनेक विषयों से संबन्धित हैं । कुछ रचनायें प्रकाशित हैं तो कुछ अप्रकाशित । स्तोत्र साहित्य के लिए इन की देन सराहनीय एवं गणनीय है । हर स्तोत्र ग्रंथ में देवताओं की पूजा करने का क्रम, उनके नाम रूप मंत्र आदि आदि हैं । निम्न लिखित ग्रंथ संस्कृत साहित्य की शोभा बढ़ा रहे हैं

1. उमा सहस्रम् यह एक उत्तम कृति है ।
प्रकाशित । गणपति मुनिवर जी के
शिष्य कपालिशास्त्री ने इसके लिए
भाष्य लिखा है ।
2. इन्द्राणि सप्तशति इन्द्राणि (वेदों के सर्वोच्च देवता इन्द्र
की प्रिया) स्तुति संबंधी सात सौ
श्लोकों वाला ग्रंथ ।
3. प्रचण्ड चण्ड त्रिशति देवी स्तुति संबंधी 300 श्लोकों
वाली रचना ।
4. उमा शतकम् 100 श्लोकों वाला ग्रंथ
5. शिव शतकम् 100 श्लोकों वाला ग्रंथ
6. उमा त्रिशति नित्य पारायण की दृष्टि से लिखा
गया 300 नामावलियों का संग्रह ।
7. इन्द्र सहस्रनाम वेदों में वर्णित इन्द्र के एक हजार
नामों की सूची । इस में कहीं
भी पुनरावृत्ति नहीं है ।
8. गीतमाला वेदों में वर्णित अग्नि, वायु एवं
सूर्य की स्तुति संबंधी ग्रंथ ।

9. रमण चत्वारिंशत् रमण की स्तुति में लिखे गये 40 श्लोकों का संग्रह । रमणाश्रम में आज भी इस का पारायण होता है ।
10. हेरम्बोपस्थानम् गणपति पूजा समय में पठनीय 40 श्लोक
11. विश्व मीमांस उपनिषदों में वर्णित देवताओं से संबंधित कृति । स्वर्ग नरक एवं विविध लोकों का वर्णन ।
12. रमण गीता भक्तों के प्रश्न और रमण महर्षि के उत्तरों से संबंधित कृति ।
13. तत्त्वघंटाशतकम् सौ श्लोकों वाली आशुकविता जो उडुपि में संयोजित अवधान में कही गयी थी ।
14. महाविद्या सूत्रम् महाशक्ति देवी की दस शक्तियों और दस महा विद्याओं से संबंधित ग्रंथ ।
15. राजयोग सार सूत्रम् राजयोग का सारांश
16. शब्द प्रमाण चर्चा वेदों की उत्पत्ति संबंधी
17. पंच ज्ञान चर्चा छुआ छूत का खण्डन इस में हुआ है ।
18. विवाह धर्म सूत्रम् विवाह की पवित्रता को बतानेवाला ग्रंथ ।
19. ईशोपनिषत् भाष्य ईशोपनिषत् को समझानेवाला ग्रंथ ।
20. उपदेश सार भाष्य रमण कृति उपदेशसारम् का भाष्य ।

आयुर्वेद संबंधी रचनायें :

21. चिकित्सानु शासनम्
22. आयुर्वेद संग्रहम्
23. प्राणतोषणम्

ज्योतिष शास्त्र संबंधी ग्रंथ :

24. षोडश श्लोकि
25. होरा निर्णय संग्रहम्
26. त्रिभाव फल चन्द्रिका ।
27. इन्द्र गीतम् तेलुगु में विरचित इन्द्र स्तोत्र ।

अपूर्ण ग्रंथ :

28. महाभारत विमर्श
29. पूर्ण (तेलुगु उपन्यास)
30. साम्राज्य निबंधनम् आदर्श सविधान संबंधी रचना